Chap-2

द्वितीय अध्याय

हिन्दी एवं गुजराती काव्य में प्रणयगीत परंपरा

प्रथम अध्याय में हम भ्रमरगीत काव्य का आदि स्रोत तथा हिन्दी एवं गुजराती काव्य-परंपरा पर उसका प्रभाव परिलक्षित कर चुके हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम दोनों भाषाओं में भ्रमरगीत की परंपरा का विवेचन करेंगे।

हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत काव्य-धारा अपना विशिष्ट स्थान रखती है। पिछले पांचसौ वर्षों से यह काव्य-धारा अजस्र रूप से प्रवाहित हो रही है। भागवत में वर्णित भ्रमरगीत का प्रसंग उसके पूर्व प्रसंग उद्धव-व्रजागमन और उद्धव-संदेश के साथ हिन्दी के अधिकतर कृष्ण भक्त कवियों ने गीति पदों के रूप में गाया है। प्रसंग, भाव एवं विचाराभिव्यक्ति में इन कवियों ने आवश्यकतानुसार परिवर्तन एवं परिवर्धन किया है। इस प्रसंग को लेकर इन कवियों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से भक्ति, ज्ञान, विरह और उपालंभ की व्यंजना की है। भ्रमरगीत काव्य-परंपरा भक्तिकाल से लेकर अद्यावधि पल्लवित होती रही है। भ्रमरगीत काव्य के सम्यक् अध्ययन के लिए हिन्दी साहित्य में उसके क्रमिक विकास का अध्ययन प्रस्तुत अध्याय में अपेक्षित है। सबसे पहले विद्यापति की पदावली में इस विषय के कुछ पद मिलते हैं, जिनमें विरहिणी राधा मधुकर को प्रेममय उलाहना देती है।[१] किन्तु हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत काव्य के महान् प्रणेता कविवर सूरदास के काव्य में सर्वप्रथम हमें भ्रमरगीत काव्य का सुष्ठु एवं क्रमबद्ध स्वरूप देखने को मिलता है। अतएव महाकवि सूरदास से ही इस काव्य-परंपरा का प्रारंभ करना अधिक समीचीन जान पड़ता है। हिन्दी भ्रमरगीत की रचना करनेवाले लगभग सभी कवियों का परिचय हिन्दी के प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथों में उपलब्ध है, अतएव हम भ्रमर गीतकारों का संक्षिप्त उल्लेख करके उनके भ्रमरगीतों की ही अधिक चर्चा करना चाहेंगे।

१- सूरदास :

सूर-काव्य का मूल स्रोत श्रीमद् भागवत रहा है। हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत

१-(अ) "भागवत के पश्चात् विद्यापति मैथिल कोकिल के कतिपय पद ऐसे मिलते हैं, जो भ्रमरगीत परंपरा में स्थान पाने के अधिकारी हैं"- सूर और उनका साहित्य : डा० हरवंशलाल शर्मा, प्रकाशक : भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़। वर्ष तृतीय संस्करण, पृ० ३४८

१-(आ) मैथिल कोकिल विद्यापति : बाबू व्रजनन्दन सहाय, पद ३८- पृष्ठ १३४

लिखने वालों में महात्मा सूरदास जी अग्रगण्य हैं। भ्रमरगीत प्रसंग को सूर ने अत्यन्त विस्तारपूर्वक लिखा है। भ्रमरगीत सूरसागर का अनुपम रत्नखण्ड है। रस, ध्वनि, अलंकार और उक्ति-वैचित्र्य का ऐसा कोष विश्व साहित्य में निरल है।[1] व्रज में कृष्ण की रूप माधुरी से प्रभावित गोपियां उनके मथुरा चले जाने पर वियोग में कितनी दुःखी हैं, उसका सजीव चित्रण भ्रमरगीत द्वारा हुआ है।

सूरसागर में तीन भ्रमरगीत मिलते हैं। एक भ्रमरगीत मात्र दो पदों में समाप्त हो जाता है।[2] ये दोनों पद चौपाई छन्द में लिखे गये हैं। इस भ्रमरगीत का प्रारंभ उद्धव के व्रजागमन से होता है। प्रथम पद में गोपियों की आशा-निराशा तथा कुब्जा पर किये गये व्यंग्य द्रष्टव्य हैं। द्वितीय पद में उद्धव द्वारा ज्ञानचर्चा का वर्णन है। अंत में उद्धव जी परास्त होते हैं और उनके भक्त बनने का वर्णन है। अंतिम पंक्तियों में भ्रमरगीत के माहात्म्य का वर्णन है।

'भ्रमरगीत जो सुनै सुनावै। प्रेम भक्ति गोपिनि की पावै।
सूरदास गोपी बड़भागी। हरि दरसन की ढोरी लागी।।'

दूसरे भ्रमरगीत का कलेवर ७० पंक्तियों के एक बृहत् पद तक सीमित है।[3] प्रारंभ में उद्धव जी के व्रजागमन पर गोपियां हर्षित होकर उनका स्वागत करती हैं। गोपियों के प्रेमभाव को देखकर संवेदनशील उद्धव जी का हृदय प्रथम तो द्रवित हो उठता है और नेत्रों में अश्रु भर आते हैं, किन्तु कर्त्तव्य के पालनार्थ योगोपदेश देने लगते हैं। उद्धव और गोपियों के बीच सैद्धान्तिक कथोपकथन होते रहते हैं। गोपियों के सहज प्रेम को देखकर उद्धव जी अपने ज्ञान को भूल जाते हैं और भक्तिभाव से व्रज के कुंजों में कृष्ण का गुणगान करते हुए कुछ समय पश्चात् गोप के वेश में मथुरा आकर श्रीकृष्ण को भाव विह्वल होकर व्रज की दशा का वर्णन करते हैं। श्याम ने अपने पीताम्बर से उनके अश्रुओं को पोंछते हुए व्यंग्यपूर्वक कहा कि कहो 'आए जोग सिखाई।'

१- भ्रमरगीत का काव्य वैभव : डा० मनमोहन गौतम, पृ० १०
प्रकाशक : रिगल बुक डिपो, दिल्ली-६ प्रथम संस्करण १९६७

२- सूरसागर : दूसरा खण्ड पद ४७११,४७१२

३- वही पद, ४७१३

उपर्युक्त दोनों संक्षिप्त भ्रमरगीतों में भ्रमर के आने का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किन्तु 'अलि' और 'मधुप' शब्दों का प्रयोग अवश्य मिलता है।

सूर का तृतीय विस्तृत भ्रमरगीत अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'सूर-सागर' के 'उद्धव व्रजागमन' से लेकर 'उद्धव-प्रत्यागमन' तक के ४०३० से ४७७८ पद भ्रमरगीत के अंतर्गत परिगणित किये जा सकते हैं। सूर ने भागवत के मूल प्रसंग में सूक्ष्म परिवर्तन एवं परिवर्धन द्वारा उसे अत्यधिक मनोरम बना दिया है। परिस्थितियों के अनुरूप सूर ने उद्धव का व्रजागमन भागवत से भिन्न बताया है। सूर सागर के उद्धव भक्तिमार्ग के विरोधी हैं। वे अद्वैतवादी, अहंकारी और ज्ञानमार्गी हैं। उनके हृदय में भक्ति की सरसता नहीं है। वे योग साधना में विश्वास करते हैं। श्रीकृष्ण उनका अहंकार भंग करने के लिए तथा प्रेम भक्ति की महत्ता समझाने के लिए गोपियों के पास भेजते हैं।[1] भागवत में तो उनका रथ और उनकी वेशभूषा ही कृष्ण के सदृश बतायी गई है जब कि सूर के भ्रमरगीत में उनका रंग भी कृष्ण और भ्रमर के समान काला बतलाकर भ्रमर पर की गई अन्योक्तियों में कृष्ण के साथ उन्हें भी समेटा गया है -

"कोऊ आवत है तन स्याम।
वैसेइ वह, वैसिय रथ बैठनि, वैसिय है उर दाम।"[2]

श्रीकृष्ण के आदेश से ज्ञान गठरी बांधकर उद्धव अभिमान के साथ गोकुल की ओर प्रयाण करते हैं। गोकुलवासी भागवत के समान ही प्रारंभ में उन्हें श्रीकृष्ण समझते हैं। श्रीकृष्ण के स्थान पर उद्धव को पाकर उनके मन खुश मुरझा जाते हैं। श्रीकृष्ण के लिखित पत्र को देखकर प्रतिकूल प्रतिक्रिया व्रजवासियों पर होती है। इसके पश्चात् उद्धव जी अपना योग संदेश सुनाते हैं। इसी बीच एक भ्रमर उड़ता हुआ आ जाता है।

"इहि अंतर मधुकर इक आयौ।
निज स्वभाव अनुसार निकट ह्वै, सुन्दर शब्द सुनायौ।।"[3]

१- सूरसागर : दूसरा खण्ड पद- ४०३९

२- वही, ४०८५

३- वही, ४११६

गोपियां शिष्टाचारवश भ्रमर के माध्यम से उद्धव एवं उनके ज्ञानमार्ग के प्रति व्यंग्य करती हैं। भ्रमर, अलि, मधुप, मधुकर आदि संबोधनों द्वारा गोपियों ने श्रीकृष्ण के प्रति भी मार्मिक व्यंग्य किये हैं। सूर के भ्रमरगीत में एक प्रकार से उपालंभों की भरमार है। गोपियां भक्तिमार्ग की सहजता को अनेक उदाहरणों द्वारा प्रमाणित करती हैं। उनके अभिप्राय में भक्तिमार्ग राजमार्ग के समान प्रशस्त है।

"काहे कौ रोकत मारग सूधौ।
सुनहु मधुप निरगुन कंटक तैं, राजपंथ क्यौं रुंधौ।।"[1]

अंत में गोपियों के गंभीर प्रेम का परिचय पाकर उद्धव नतमस्तक हो जाते हैं और सगुण के अनुयायी बन जाते है :-

"अब अति चकितवंत मन मेरौ।
आयो हौ निरगुन उपदेसन, भयौ सगुन कौ चेरौ।।"[2]

मथुरा आकर वे स्वयं श्रीकृष्ण के समक्ष स्वीकार करते हैं कि प्रेममार्ग ही भगवत-प्राप्ति का सुलभ साधन है। ज्ञान बुद्धि प्रधान होता है जब कि भक्ति में हृदय की प्रधानता होती है। राधा और गोपियों के प्रेमाश्रु में उद्धव का ज्ञान गल जाता है। सूर ने उद्धव और गोपियों के संवाद का आधार ग्रहण कर ज्ञान की नीरसता और भक्ति की सरसता दिखाकर प्रेम-भक्ति मार्ग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार ज्ञान पर भक्ति, मस्तिष्क पर हृदय और निर्गुण पर सगुण की महत्ता का प्रतिपादन सूर के भ्रमरगीत का उद्देश्य रहा है।

सूरदास ने कतिपय नये प्रसंगों की अवतारणा द्वारा प्रस्तुत काव्य को मार्मिक और प्रभावशाली बना दिया है। भागवत में इस प्रसंग के अंतर्गत कुब्जा और राधा का नामोल्लेख नहीं है। कुब्जा के चरित्र की अवतारणा द्वारा कवि को असूया भाव की

१- सूरसागर : दूसरा खण्ड पद- ४५०६

२- वही, ४६६८

व्यंजना का अवसर मिला है। इसी पात्र द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति उपालंभ और व्यंग्य का एक नवीन साधन कवि ने अपनी गहरी सूझ-बूझ से ढूंढ लिया है। प्रेममयी राधा के पात्र द्वारा विरह का मार्मिक चित्र ~~चित्र~~ प्रस्तुत करने में कवि को सफलता मिली है। भागवत और सूर के भ्रमर-गीत की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि सूर ने भागवत का आश्रय लिया है, तथापि अपनी प्रतिभा से ऐसी-ऐसी घटनाओं की उद्भावना की है, जिनमे मानव हृदय की शाश्वत वृत्तियों की अनुभूति होती है। उनके कृष्ण भागवत के कृष्ण के समान केवल कर्तव्य-निष्ठा के आग्रह से ही गोपियों को संदेश भेजने में प्रवृत्त नहीं होते, अपितु भावुक हृदय होने के कारण विरह की कसक का अनुभव भी करते हैं। उनका प्रेम मानवीय धरातल पर ही पल्लवित हुआ है। सूर ने उद्धव को भागवत के उद्धव के समान मुखरता भी प्रदान नहीं की; वे बहुत कम बोलते हैं। कारण यही है कि गोपियों के रूप में स्वयं सूरदास अपनी प्रेम-भक्ति का प्रतिपादन करते हुए ज्ञानी उद्धव को बोलने का अवसर ही नहीं देते।---वस्तुत: गोपियों की स्वत: प्रेरित भावपूर्ण उक्तियों के आगे उद्धव की बोलती बन्द हो जाती है। गोपी-उद्धव संवाद के इन पदों में अनायास ही अनेक प्रकार के तत्त्व-दार्शनिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि प्रविष्ट हो गये हैं।[1]

२-परमानंददास -

अष्टछाप के कवियों में सूर के पश्चात् पुष्टिमार्ग के 'द्वितीय सागर' भक्त प्रवर परमानन्ददास जी का स्थान उल्लेखनीय है। 'सूरसागर' के समान उनके द्वारा रचित पदों का संग्रह 'परमानन्दसागर' के नाम से प्रसिद्ध है। यह इस समय प्रकाशित रचना है। जिसका संपादन डा० गोवर्धननाथ शुक्ल ने किया है।

परमानन्ददास का जन्म एक निर्धन कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में फर्रुखाबाद जिले के अंतर्गत कन्नौज में सं० १५५० में हुआ था।[2] वे प्रारंभ से ही विरक्त प्रकृति के थे।

१- सूर और उनका साहित्य : डा० हरवंशलाल शर्मा, तृतीय संस्करण-पृष्ठ ३५५

२- अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय : डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० २२६

धीरे-धीरे अपनी सभी प्रवृत्तियों को वे ईश्वरोन्मुख करते गये । बचपन में ही वे पद बनाया करते थे और कीर्तन मण्डली में गाया करते थे । जब वल्लभाचार्य जी अड़ैल में पधारे हुए थे, कवि का उनसे सम्पर्क स्थापित हुआ । उनके वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने की तिथि ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी सं० १५७६ वि० है । उस समय उनकी उम्र २६ वर्ष की थी । सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पश्चात् वे गोकुल में आकर गोवर्धन मंदिर में कीर्तन करने लगे । प्रभु स्तवन द्वारा आत्मकल्याण और लोक कल्याण ही उन्हें अभीष्ट था । वे सीधे-सादे भक्त, कवि एवं कीर्तनकार थे जिन्होंने अपना सर्वस्व गुरु और गोविन्द को समर्पित कर दिया था । वार्ताकार ने उनके काव्य कीर्तन की प्रशंसा की है ।[१] गो० विट्ठलनाथ जी ने उन्हें सूर के समान सम्मान प्रदान किया है । युगललीला में ध्यान लगाकर सं० १६४१ में कवि ने अपने पञ्च भौतिक देह का विसर्जन किया ।[२] उनका नित्य लीला-प्रवेश गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की उपस्थिति में हुआ था ।

'परमानन्द सागर' में 'सूर सागर' के समान संपूर्ण भागवत की कथा का समावेश न होकर दशम् स्कन्ध के विभिन्न प्रसंगों का वर्णन है । श्रीकृष्ण की बाल, पौगंड एवं किशोर लीलाओं का कवि ने भावपूर्ण वर्णन किया है । वल्लभ-संप्रदाय के कीर्तन संग्रहों में भी इनके कतिपय पदों का संकलन मिलता है । गोपी विरह के अंतर्गत भ्रमरगीत सम्बंधी पद मिलते हैं । कहीं-कहीं गोपियों ने ज्ञानमार्ग का खंडन किया है ।[३] चौपाई छन्द में आबद्ध भ्रमरगीत सम्बन्धी पद अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है ।[४] भाव प्रवणता कल्पना, अनुभूति, संगीतात्मकता एवं रसात्मकता की दृष्टि से ये पद निश्चय ही सरस बन पड़े हैं ।

१- 'पाछे ये बड़े योग्य भए और कवीश्वर हू भए। वे अनेक पद बनाय के गावते । सो 'स्वामी' कहावते और सेवकहू करते । सो परमानन्ददास के साथ समाज बहोत, अनेक गुनी जन संग रहते ।' - वार्ता भावप्रकाश पृ० ७८६

२- परमानंद सागर डा० गो.ना.शुक्ल-भूमिका पृ० ११ भावप्रकाश पृ० ८३३

३- वही, पद ५५४ पृ० १८८

४- 'कमल नैन मधुबन पढ़ि आए।
निर्गुन को सन्देश लादि गोपिन पै लाए ।
ऊधौ पढ़ि पढ़ि अब भए ग्यानी ।
नीति अनीति सबै पहचानी ।।

- वही पद ५६३

३- नन्ददास :

हिन्दी भ्रमरगीत काव्य के रचयिताओं में सूर के पश्चात् नंददास का स्थान महत्वपूर्ण है। पुष्टिमार्गीय कृष्ण भक्त कवियों में केवल वे ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने फुटकर पदों के अतिरिक्त कथा प्रवाह युक्त काव्य लिखने का प्रयास किया है। उनका 'भंवरगीत' भी एक प्रकार से कथात्मक काव्य है। यह भ्रमरगीत परम्परा की एक सुदृढ़ कड़ी है। इसका प्रारंभ सूरदास के संक्षिप्त भ्रमरगीत से मिलता-जुलता है।[१] प्रारंभ की इस समानता को छोड़कर उसके विकास में नंददास की मौलिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। उसका काव्य सौष्ठव अत्यंत उत्कृष्ट है।

नंददास के भ्रमरगीत का आधार भी भागवत् का दशम् स्कन्ध ही है। प्रस्तुत भ्रमरगीत को दो भागों में विभाजित किया है। पहले भाग में गोपी-उद्धव संवाद है। दूसरे भाग में श्रीकृष्ण-विरह से व्यथित गोपियों का चित्रण है। नंददास ने श्रीकृष्ण द्वारा उद्धव को व्रज भेजना, रास्ते के प्राकृतिक सौन्दर्य आदि का वर्णन न करके अपने भ्रमरगीत का आरंभ सीधे ही किया है। उद्धव जी गोकुल में आ चुके हैं। वे ज्ञान भार से बोझिल हैं। अवसर मिलते ही गोपियों को ज्ञानोपदेश देना आरंभ करते हैं -

"ऊधौ कौ उपदेश सुनौ व्रजनागरी।
रूप,सील,लावन्य सबै गुन-आगरी ।।
प्रेम-धुजा रस-रूपनी उपजावन सुख-पुंज।
सुन्दर-स्याम -बिलासिनी, नव वृंदावन कुंज ।।"
- सुनौ व्रज नागरी ।।? ।।"

उद्धव श्रीकृष्ण का संदेश सुनाकर शीघ्र ही मधुपुर लौट जाना चाहते हैं। उनके मुख से अपने प्रियतम मधुसूदन का नाम सुनकर प्रेमावेश को लेकर गोपियां अपनी सुध-बुध

१- ऊधौ कौ उपदेश सुनौ किन कान दै।
हरि निर्गुण संदेश पठायौ आन दै ।।
----सूरसागर(ना.प्र.स.)पद ४७१४

२- नंददास प्रणीत भ्रमरगीत,
सं० जवाहरलाल चतुर्वेदी, गीताप्रेस,गोरखपुर।

खो बैठती हैं और मूर्च्छित होकर गिर पड़ती हैं। उनकी वाणी अवरुद्ध हो जाती है और नेत्रों में जल भर आता है। गोपियों की ऐसी दशा देखकर उद्धव जी उनकी आंखों पर जल छिड़कते हैं। तनिक सुधि प्राप्त होने पर गोपियां उद्धव को आसन ~~पर~~ बिठाती हैं। अपने प्रियतम कृष्ण के संदेश को सुनाने के लिए आतुर गोपियों के समक्ष उद्धव जी अपनी ज्ञान गठरी खोलते हैं। वे निराकार ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते हुए कहते हैं कि यदि ज्ञान दृष्टि से देखा जाय तो श्रीकृष्ण तुम से दूर नहीं हैं। सगुण तो उपाधि मान है। वह तो निर्गुण, निराकार तथा निर्लिप्त ब्रह्म है -

"वे तुम ते नहिं दूरि, ग्यान की आंखिन देखौ।
अखिल-विस्व भरपूर, रूप सब उनहिं बिसेखौ।।[१]

गोपी-उद्धव संवाद निर्गुण सगुण अर्थात् योग और प्रेम के सम्बन्ध पर आधारित है। उद्धव निर्गुण, निराकार, अमूर्त ब्रह्म की उपासना का आदेश प्रदान करते हैं, जो सरल स्वभाव की व्रजवनिताओं को स्वीकार्य नहीं। उद्धव योगमार्ग का समर्थन करते हुए अपने तर्क प्रस्तुत करते हैं। प्रत्युत्तर में गोपियां प्रेम भक्ति और सगुण ब्रह्म की श्रेष्ठता के पक्ष में प्रत्युत्तर देती हैं। उन्हें लीला-विहारी कृष्ण का स्वरूप ही पसन्द है। उनके हृदय में माखनचोर नंदनंदन कृष्ण की मूर्ति समाई हुई है। वे ज्ञान के फेर में पड़ना नहीं चाहतीं। उद्धव जी कहते हैं कि जिस सगुण सोपाधि रूप का ध्यान किया जाता है वह ब्रह्म का यथार्थ रूप नहीं है। गोपियां इसका प्रतिकार करती हुई कहती हैं कि प्रेम के बिना कर्म व्यर्थ है। प्रेममार्ग के अनुयायी भक्त किसी प्रकार के बंधन में न पड़कर भगवान के श्रीचरणों में मन लगाकर उनका सामीप्य प्राप्त करना चाहते हैं। इसी में उन्हें अवर्णनीय आनंद मिलता है। भक्त नहीं चाहता कि भगवान में मिलकर वह भी भगवान बन जाय प्रत्युत वह उससे अलग रहकर उसका दर्शन, भजन और सेवा करना चाहता है। योगी लोग तपस्या द्वारा समाधिस्थ होकर अपनी ज्योति ब्रह्म ज्योति में मिलाना चाहते हैं जब कि भक्त सगुण-निर्गुण, माया, ज्ञान, योग कर्म आदि के प्रपंच से दूर रहकर उस रूपराशि के दर्शन मात्र चाहता है -

---

१- नंददास प्रणीत-भ्रमरगीत, पद-१६
सं० जवाहरलाल चतुर्वेदी, गीताप्रेस, गोरखपुर।

जोगी जोगहिं भजै, भक्त निज रूपहिं जानैं,
प्रेम पीयूषहिं प्रघट, स्याम-सुन्दर-उर-आनैं ।।[१]

व्रज बालाओं के नेत्रों के आगे श्रीकृष्ण का रसेश रूप सदा आच्छादित रहता है । श्रीकृष्ण के प्रकट रूप के प्रति उनका अनन्य प्रेम है । रसेश कृष्ण को छोड़कर उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता । गोपियों की दृष्टि के सामने प्रियतम कृष्ण की पीतांबर धारी मधुर मूर्ति उभर आती है । वे भाव-विभोर होकर अपनी परवशता, दीनता आदि प्रकट करती हैं । उनके सामने पूर्ण-रूप से आत्म समर्पण कर मिलन की याचना करती हैं । विरह विधुरा गोपियों ने अपने प्रेम में कातर होकर अनेक उपालंभ दिये हैं । हम विरह सागर में डूब रही हैं । हमें बाँह पकड़कर सहारा क्यों नहीं देते ? निष्ठुर बनकर कहाँ छिपे हो ? कोई उन्हें विरहानल से बचाने की प्रार्थना करती हैं । कोई व्यंग्य में कहती हैं कि अब वे मथुरा के ऐश्वर्य को पाकर इतरा गये हैं ।[२] इस प्रकार गोपियां व्यंग्य पर व्यंग्य बाण छोड़ती हैं । उसी समय कहीं से एक भ्रमर उड़ता हुआ आ गया । उसे देखते ही भ्रमर को कृष्ण तथा उनके दूत उद्धव के समान मानकर इन दोनों पर गोपियों ने व्यंग्य,आक्षेप एवं विनोद किया है । गोपियों के चरण-कमल के स्पर्श का अभिलाषी भ्रमर एक गोपी के पाद पद्म पर आकर बैठ जाता है ।[३] श्रीकृष्ण और भ्रमर की श्यामता की समानता को दृष्टि समक्ष रखकर गोपियों ने बड़े मार्मिक व्यंग्य किये हैं । श्रीकृष्ण को कुबड़ी दासी कुब्जा के प्रेम में बंधे हुए पाकर गोपियाँ आश्चर्य व्यक्त करती हैं और कहती हैं कि उन्हें कुब्जा का जूठा खाने में मजा आता है -

'स्वामी तुम्हारौ स्याम कूबरी दास कहावत ।
अब यहै जदु-कुल पावन भयौ, दासी-जूठन खाई ।।४७।।

१- नंददास प्रणीत, भ्रमरगीत- पद ३० सं० जवाहरलाल चतुर्वेदी,गीताप्रेस,गोरपुर ।
२- वही, पद ३३
३- वही, पद ४६

गोपियों का प्रणयावेग उपालंभ तथा व्यंग्य बनकर प्रवाहित होता रहा है। किन्तु इस परिहास का विपरीत प्रभाव स्वयं उनके मन पर पड़ता है और उनकी विरह व्यथा बढ़ जाती है। अब वे प्रेमातिरेक के कारण उच्च स्वर से विलाप करने लगती हैं -

"या विधि सुमरि गुबिंद, कहतिं, कहतिं ऊधौ-प्रति गोपीं।
मृत-संख्या करि बदत सकल कुल लज्जा लोपी।
ता-पाछैं इक बार हीं रोइ उठीं ब्रज-नारि ;
हा करुणा-मैं नाथ हो, के सौ कृष्ण मुरारि ।।
---फाटि हियरौ चल्यौ ।।६० ।।

रो रोकर गोपियों के मुख, कंचुकी और हार भीग गये। गोपियों के इस प्रेम पारावार में निमज्जित होकर उद्धव का निर्गुणाभिमान गल जाता है। कृष्ण प्रेम में अनुरक्त गोपियों को अब वे वंदनीय-अभिनंदनीय समझने लगते हैं। वे ब्रज में तृण, लता अथवा गुल्म बनने की अभिलाषा प्रकट करते हैं।[१] उद्धव जी अब वैसा ही प्रेम प्राप्त करना चाहते हैं जैसा गोपियों के सरल हृदय में विद्यमान है। ब्रजवास की अभिलाषा से मुक्त उद्धव जी मथुरा लौट आते हैं और कृष्ण के सम्मुख गोपियों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए निष्ठुर न बनकर उन्हें शीघ्र ही वृन्दावन जाने का अनुरोध करते हैं :-

"पुनि-पुनि कहै अहो स्याम, चलौ वृंदावन रहिऐ।
परम-प्रेम कौ पुंज जहां गोपिन्ह-संग लहिऐ।
और संग सब छांडि कैं, उन्ह-लोगन्ह-सुख-देहु।
नातरु टूट्यौ जात है, अब -हीं नेह -सनेहु ।।
---करौगे फिरि कहा ?७२ ।।

भगवान उद्धव से श्रीकृष्ण कहते हैं कि वे गोपियों से पृथक् नहीं वरन् जल तरंग के समान एक हैं। काव्यान्त में कवि ने प्रस्तुत रचना के प्रणयन से आत्म-संतोष अनुभव किया है।

१- नंददास प्रणीत-भ्रमरगीत, पद ६७
सं० जवाहरलाल चतुर्वेदी, गीताप्रेस, गोरखपुर।

तुलसीदास :

रामभक्त कविवर तुलसीदास जी की समस्त रचनाओं में कृष्ण विषयक केवल एक रचना `कृष्ण गीतावली` ही उपलब्ध होती है। जिस प्रकार प्रस्तुत कवि द्वारा रचित `गीतावली` में राम सम्बंधी पद संग्रहीत हैं उसी प्रकार `कृष्ण गीतावली` में कृष्ण सम्बंधी ६१ पद संग्रहीत हैं। इन पदों में कृष्ण की बाललीला एवं भ्रमरगीत प्रसंग का विशेषरूप से वर्णन मिलता है।

कृष्ण गीतावली के भ्रमरगीत सम्बंधी पदों में `भ्रमर` का स्पष्ट उल्लेख न होकर उद्धव के लिए `मधुकर`, `मधुप` आदि शब्दों का प्रयोग किया है। इन पदों में गोपियों के मर्यादा मण्डित रूप का परिचय मिलता है। सूर की गोपियों की सी प्रगल्भता के दर्शन तुलसी की गोपियों में नहीं होते। नंददास की गोपियों के समान ये वाक्पटु और तर्कशीला भी नहीं हैं। उनमें आद्यन्त भावुकता, दीनता, विनयशीलता, झिझक और शालीनता के दर्शन होते हैं। वे सरल स्वभाव की विश्वासमयी भक्त नारियां हैं। उनमें प्रेम-लक्षणा भक्ति के प्रति दृढ़ आस्था एवं विश्वास है। उनका एक मात्र लक्ष्य अपने प्रियतम का साक्षात्कार है। तुलसी के भ्रमरगीत के कथानक का प्रारंभ इस प्रकार हुआ है -

`ऊधो या ब्रज की दसा विचारौ।
ता पीछे यह सिद्धि आपनी जोग कथा विस्तारौ।
जा कारन पठये तुम माधव सो सोचहु मन मांही।
केतिक बीच विरह परमारथ जानत हौ किधौं नाहीं।।[१]

गोपियां उद्धव से ब्रजवासियों की दशा पर विचार करने के पश्चात् योगमार्ग का उपदेश देने के लिए कहती हैं। ब्रजवासी इतने प्रेम में व्याकुल और विह्वल हैं कि उनके सामने योगमार्ग का उपदेश देना उचित सिद्ध नहीं होगा। तुम स्वयं समझदार और श्रीकृष्ण के निकटस्थ साथी हो। जल में डूबे हुए को क्या फेन बचा सकता है? जिनके हृदय में श्रीकृष्ण की मूर्ति समाई हुई है वहां निर्गुण के लिए कैसे स्थान हो सकता है? इस प्रकार

१- कृष्ण गीतावली, पद-३३

प्रारंभ से ही गोपियों ने ज्ञानमार्ग का विरोध किया है ।

तुलसी ने भ्रमर प्रवेश के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया । मात्र भ्रमर को सम्बोधित करके गोपियां अनेक प्रश्न पूछने लगती हैं ।[1] ३६ वें पद में गोपियों ने भ्रमर से श्रीकृष्ण का संदेश सुनाने के लिए कहा है । ४१वें पद में कुब्जा को लेकर श्रीकृष्ण के प्रति व्यंग्य किया गया है । इसके पश्चात् गोपियों ने मधुकर के ज्ञानोपदेश का उपहास किया है । ४४ वें पद में गोपियां स्पष्ट कहती हैं कि यहां ज्ञानोपदेश का भाषण कोई नहीं सुनेगा । ४७वें पद में पुन: कुब्जा को लेकर कृष्ण के प्रति व्यंग्य किया गया है कि मथुरा में जाकर श्रीकृष्ण एक चेरी के चाकर बन गए हैं । इस प्रकार भ्रमरगीत काव्य की उपालंभ पूर्णता के दर्शन कृष्ण गीतावली के कतिपय पदों में होते हैं । ये उपालंभ बड़े मार्मिक बन पड़े हैं । भ्रमरगीत सम्बंधी लगभग २६ पद मिलते हैं जो विभिन्न राग-रागिनियों में विभक्त हैं ।

रहीम :

रहीम जी का पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था । अकबर बादशाह के अभिभावक बैरामखां के ये पुत्र थे । अकबरी दरबार के प्रसिद्ध वीरों में उनका स्थान उल्लेखनीय रहा हो । ये काव्य-मर्मज्ञ और दानवीर थे ।

मायाशंकर याज्ञिक के अनुसार रहीम दोहावली या सतसई, बरवै नायिका भेद, शृंगार मदनाष्टक और रास पंचाध्यायी आदि ग्रंथ उनके लिखे हुए हैं । 'रहीम रत्नावली' के नाम से याज्ञिक जी ने रहीम के दोहों का संकलन किया है । इस दोहावली का प्रकाशन साहित्य सेवा सदन, काशी से सं० १९८५ में हुआ है ।[2] 'रहीम रत्नावली' में भ्रमरगीत सम्बंधी लगभग बीस बरवै प्राप्त होते हैं । ये बरवै अवधी भाषा में लिखे गये हैं । विरह व्यथिता गोपियों की व्याकुलता का वर्णन मर्मस्पर्शी बन पड़ा है । उद्धव द्वारा दिए गए

१- कृष्ण गीतावली, पद-३४

२- रहीम रत्नावली : सं० मायाशंकर याज्ञिक
बरवै संख्या-२१,४३ से ४७,५४,५६ से ६१,६८,७२,७६,८४,८९,९०

योगमार्ग के उपदेश को ग्रहण करने में उनकी असमर्थता एवं विवशता का वर्णन हृदयस्पर्शी शब्दों में अंकित हुआ है।

रसखान :

रसखान दिल्ली के एक पठान सज्जन थे। श्रीमद् भागवत के अध्ययन ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया और परिणामस्वरूप वे कृष्ण भक्त बन गये। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में इनका उल्लेख हुआ है। वे गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के विशेष कृपापात्र थे ऐसा कहा गया है।

रसखान की रचनाएं अत्यंत मधुर और हृदयस्पर्शी हैं। पाठक का मन उनमें स्वाभाविक ही तल्लीन हो जाता है। उन्होंने अधिकांश कृष्ण भक्तों की तरह पद न गाकर कवित्त और सवैयों में कृष्ण काव्य की रचना की है। उन्होंने दोहों की भी रचना की है जो प्रेम-वाटिका में संकलित हैं। आलोचक रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार यह सं० १६७१ की रचना है।[१] 'प्रेमवाटिका' के ५२ दोहों में प्रेम की महिमा का वर्णन किया गया है। ये ब्रजभूमि, ब्रजराज और ब्रजमण्डल के प्रति अद्भुत अनुरात रखते थे। उनकी एक अन्य प्रकाशित रचना 'सुजान रसखान' में भी अधिकांश राधाकृष्ण की प्रीति एवं प्रणयलीलाओं का वर्णन मिलता है।

'रसखान-कवितावली' नाम से रसखान की कविताओं का संपादन रूपनारायण पाण्डेय ने किया है। प्रस्तुत संग्रह में भ्रमरगीत सम्बंधी तीन सवैये मिलते हैं।[२]

सेनापति :

संभवत: सेनापति कवि का उपनाम रहा होगा। उनके वास्तविक नाम के सम्बंध में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होते। उनका जन्म सं० १६४६ के आसपास माना जाता है।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल
पृष्ठ १६२ संस्करण २००३

२- रसखान कवितावली : प्र० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
पृ० १०- पद ७३,७४,७५ (सन् १९३९)

'कवित्त रत्नाकर' और 'काव्य कल्पद्रुम' उनकी दो प्रमुख रचनाएं हैं। कवित्त रत्नाकर का रचनाकाल १७०७ है।[१] इसका एक प्रामाणिक संस्करण प्रयाग-विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् से प्रकाशित हुआ है। इसके संपादक श्री उमाशंकर शुक्ल हैं। उद्धव-गोपी संवाद से सम्बंधित कुछ कवित्त इसमें संकलित हैं यद्यपि इनकी संख्या अधिक नहीं।

घासीराम :

घासीराम हरदोई जिले के निवासी एक ब्राह्मण थे। इनका कविताकाल सं० १६८० के लगभग माना जाता है। साहित्य प्रभाकर के पहले भाग में इनके दो पद मिलते हैं जिनकी परिगणना भ्रमरगीत परंपरा के अंतर्गत की जा सकती है।[२] प्रथम पद में पाती की चर्चा है और द्वितीय पद में वियोग व्यथा के कारण गोपियों के दु:खित होने का वर्णन है। पाती की चर्चा इस प्रकार है -

स्याम लिखे गुन पाती के
आखर जोग चिठि यह जो सुनि पै है।
बाचत ही उड़ि जायगो
प्राण कपूर लौं फेरि न हाथन ह्वै है।
ऊधो चुपाउ सुनी खबरैं
बृजभान लली तन क्यों विष ह्वै है।
काल बली सम राधे हमारी
सो वा कुबिजा की खवासिनी ह्वै है ।।१।।

१- (१) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : रामकुमार वर्मा, पृ० ४७३ चतुर्थ संस्करण।

(२) सेनापति कृत : कवित्त रत्नाकर- संपादक : उमाशंकर शुक्ल, प्र० हिन्दी परिषद हिन्दी विश्वविद्याय, प्रयाग।
पहली तरंग : पृष्ठ २१ कवित्त ६६
कुबिजा उर लगाइ हमह उर लगाइ(१)
पी रहे हुइ के तन मन वारि दीने है।
वै तो एक रीत जोग, हम एक रति जोग
सूल कहि उनके हमारे सूल कीने है।

२- साहित्य प्रभाकर : भाग पहला सं० महालचंद वपेद, प्र० ओसवाल प्रेस, नं० १९ सोना गोव स्ट्रीट- कलकत्ता।

मुकुन्ददास :

मुकुन्ददास को बादशाह जहांगीर(सलीम) का आश्रय प्राप्त था । अत: उनका कविताकाल सं० १६७५ के लगभग रहा होगा । इनके द्वारा रचित `भंवरगीत` नाम ग्रंथ का पता चला है । इस काव्य की हस्तलिखित प्रतिलिपि इलाहाबाद जिले में स्थित सिरायू गांव के महन्त व्रजलाल जी के पास है । इसमें ७५ श्लोक हैं । प्रस्तुत रचना नंददास के भंवरगीत से प्रभावित प्रतीत होती है । उसका प्रारंभ इस प्रकार है -

लिषतं भंवरगीता मुकुन्ददास कृत ।।
हरिजी बैठे एकान्त मतौं उधव जन सौं ।
गोपी मन आधीन विसर्जन है तन मन सौं ।
सब अय हे सदा ऐसन कधू औ लंब ।।
ताते वेग जाहु वृज उधौ करिये नहीं विलंब ।
जाई उपदेसिये ।।१ ।।

अक्षर अनन्य :

मिश्र बन्धुओं के अनुसार इनका जन्म काल सं० १७०१ और कविताकाल सं० १७३५ है । ये निवृत्तिमार्ग के साधु थे । दतिया नरेश पृथ्वीचंद के दरबार में ये दीवान थे । बाद में विरक्त होकर ये पन्ना में रहने लगे । अक्षर अनन्य ने अपने आपको अक्षर,अच्छिर और अनिन्न आदि नामों से संबोधित किया है । इन्होंने योग और वेदान्त पर कई ग्रन्थ लिखे हैं । राजयोग, विज्ञानयोग, ध्यानयोग,सिद्धान्तबोध, विवेक दीपिका,ब्रह्मज्ञान, अनन्य प्रकाश आदि इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं । इन्होंने `दुर्गा सप्तशती` का पद्य में अनुवाद किया है ।[१] अक्षर अनन्य की परिगणना ज्ञानाश्रयी निर्गुण संत परंपरा के अंतर्गत होती है । इनके द्वारा रचित `प्रेम दीपिका` का संपादन लाला सीताराम बी०ए० ने किया है । जो हिन्दुस्तानी एकेडेमी यू० पी० से प्रकाशित है । इसमें श्रीकृष्ण की आज्ञा से उद्धव का

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल ।
पृष्ठ-७८, सं० २००२

गोपियों के साथ विहार करना और सूर्यग्रहण के अवसर पर यादवों के साथ श्रीकृष्ण की कुरुक्षेत्र यात्रा का वर्णन है। नागरी प्रचारिणी सभा के संग्रहालय में भी इसकी हस्तलिखित प्रतिलिपि सुरक्षित है जो एकेडेमी से प्रकाशित रचना से मिलती-जुलती है।

मतिराम :

रीतिकालीन कवियों में साहित्य शास्त्र के आचार्य की अपेक्षा कवि की दृष्टि से मतिराम का महत्व अधिक है। इनका जन्म तिकवांपुर में सं० १६७४ के लगभग हुआ था। रीतिकालीन अधिकांश कवियों की तरह इन्होंने भी कोई प्रबन्धात्मक रचना प्रस्तुत नहीं की। इन्होंने सुबोध किन्तु प्रांजल भाषा में सरल और मधुर कवित्तों की रचना की है। इनमें किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं है और भाव व्यंजना भी अत्यंत स्वाभाविक है। इन्होंने 'ललित ललाम' नामक अलंकार ग्रंथ के अतिरिक्त 'रसराज' 'साहित्यसार' छंदसार' तथा सतसई आदि की रचना की है। 'ललित ललाम' में अलंकारों के उदाहरण स्वरूप ३ छंद ऐसे मिलते हैं जिनमें उद्धव-गोपी प्रसंग की चर्चा है।[१] मतिराम सतसई में भी एतद् विषयक ४ दोहे हैं।

आलम :

आलम का कविताकाल सं० १७४० से १७६० माना जाता है। आलम जन्म से ब्राह्मण थे किन्तु शेख रंगरेजिन के प्रेम में फंसकर मुसलमान हो गये और उसके साथ विवाह कर लिया। शेख और आलम दोनों को कवित्व शक्ति प्राप्त थी। आलम ने अधिकांश

१- मतिराम ग्रंथावली- सं० पं० कृष्णबिहारी मिश्र
प्रकाशक : गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ।
चतुर्थ संस्करण सं० २०१८ बि.
पृष्ठ ३८८ दोहा १८६
,, ३९८ छंद २२२
,, ४०९ दोहा २९३
,, ४२४ छंद ३७५
,, ४७२ दोहा ४०८
,, ४९३ दोहा ६२१

शृंगार व भक्तिभावपूर्ण कविताएं लिखी हैं। उनकी कविताओं का एक संग्रह 'आलम केलि' के नाम से प्रकाशित हुआ है जिसका संपादन लाला भगवानदीन ने किया है। 'आलम केलि' में भंवरगीत शीर्षक से ३७ कवित्त मिलते हैं।[1] प्रारंभ के २०१ से २११ तक के कवित्त भ्रमरगीत सम्बंधी हैं। २२० से २२४ तक के कवित्तों में उद्धव के मथुरागमन के पश्चात् गोपी दशा का वर्णन है। २२५ एवं २२६ दोनों कवित्तों में माता यशोदा के विरह का वर्णन अंकित है। इसके पश्चात् २३७ तक के कवित्तों में गोपियों के विरह का वर्णन है।

देव :

महाकवि देवदत्त का स्थान रीतिकालीन कवियों में प्रमुख माना जाता है। ये 'देव' के उपनाम से प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म सं० १७३० में इटावा के कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इन्होंने अनेक राजाओं के आश्रय में रहकर विभिन्न विषयों पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं। कुछ विद्वानों ने इनकी रचनाओं का संपादन किया है। 'देवसुधा' नाम से मिश्रबंधुओं ने उनके ग्रंथों से छांट-छांट कर २७२ परमोत्कृष्ट छंदों का संपादन किया है। प्रस्तुत पुस्तक में उद्धव-संवाद शीर्षक से ७ कवित्त मिलते हैं।[2] उद्धव जैसे ही गोकुल में आते हैं चारों ओर कोलाहल मच जाता है -

ऊधो आए, ऊधो आए, स्याम को संदेशो लाए
सुनि गोपी-गोप धाए, धीर न धरत हैं;
चौंरी लगि दौरी उठि, भौंरी लौं भ्रमति मति,
गनति न ताऊ, गुरु लोगनि डरति हैं।
ह्वै गई बिकल बाल बालम-वियोग भरीं,
जोग की सुनत बात गात यों जरत हैं;
भारी भूए भूषन, संभारे न परत अंत,
आगे को धरत पग पाछे को परत हैं।

१- आलम केलि- सं० लाला भगवानदीन- कवित्त २०१ से २३७

२- देवसुधा : सं० मिश्रबंधु, प्रकाशक : गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ
चतुर्थ संस्करण, सं० २०२० वि०
पृष्ठ-१३६, छंद-२५५ से २६१

गोपियों की विरह व्यथा का वर्णन अत्यंत मार्मिक है । उद्धव की ज्ञानचर्चा उन्हें आकर्षक नहीं लगती । वे तो प्रियतम कृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए लालायित हैं । उनकी विवशता दर्शनीय है -

`जोगहि सिखे हैं ऊधो जो गहि कै हाथ हम
सो न मन हाथ, ब्रजनाथ साथ जै चुकीं ।
`देव` पंचसायक नचाई खोलि पंचन मैं,
पंचहू करनि पंचामृत सो अचै चुकीं ।
कुल-बधू ह्वै कै हाय कुलटा कहाई अरु
गोकुल मैं, कुल मैं कलंक सिर सै चुकीं ;
चित होत हित न हमारी वित ओर, सौ तौ
वाही चितचोरहि चितौव चित दै चुकी ।।

श्रीकृष्ण और कुबड़ी कुब्जा की अनोखी जोडी को लेकर जो व्यंग्य किया गया है, उसकी अनोखी छटा देखते ही बनती है -

`को हमकौं तुमसे तपसी बिनु, जोग सिखावन आई है उधौ ।
पै यह पूछियै, जू उनकौं, सुधि पाछिली आवति है कबहू धौं ?
एक भली भई भूप गये अरू, भूलि गये दधि माखन दूधौ ।
कूबरी सी अति सूधी वधू कौं मिल्यौ वर `देवजू` स्याम सौं सूधौ ।।

चाचा हितवृन्दावनदास :

चाचा हितवृन्दावनदास का जन्म सं० १७६५ में हुआ था । ये पुष्कर क्षेत्र के निवासी गौड़ ब्राह्मण थे । इनके द्वारा रचित भ्रमरगीत नाम की एक सुन्दर रचना हस्त-लिखित रूप में राधावल्लभ जी का मंदिर, वृन्दावन में मिलती है । यह रचना एक सौ नौ पदों तथा नौ दोहों में आबद्ध है । रचना का अधिकांश वर्णनात्मक होने के कारण भावों की गंभीरता का अभाव है । जिस प्रकार सूर के लिए कहा जाता है उसी प्रकार उनके लिए भी अनुश्रुति प्रसिद्ध है कि इन्होंने भी सवा लाख पदों की रचना की है । इनमें २०००० पद उपलब्ध हैं । इनकी रचनाएं अद्यावधि अप्रकाशित हैं किन्तु कुछ पद राग - रत्नाकर आदि में संग्रहीत हैं । इत्रपुर राज्य के पुस्तकालय एवं मथुरा में इनकी कई रचनाएं सुरक्षित हैं ।

घनानन्द :

घनानन्द का जन्म सं० १७४६ के लगभग हुआ था । उनका प्रारंभिक जीवन ऐश्वर्य और वैभव संपन्न था । कवि जब काव्योद्यान में प्रवेश कर रहा था, उसी समय सुजान नामक एक वेश्या के अनुराग में रंग गया । बाद में ये कृष्ण भक्त हो गये किन्तु सुजान शब्द के प्रति अनुरक्ति न छूट सकी । यही कारण है कि कवि ने अपनी परवर्ती रचनाओं में सुजान शब्द का प्रयोग कृष्ण का पर्यायवाची मानकर किया है । घनानंद की रचनाओं में भ्रमरगीत सम्बंधी कुछ छंद मिलते हैं । गोपियां उद्धव के निर्गुण मार्ग का अनेक प्रकार से विरोध करती हैं -

"नाद कौ सवाद जानै बापुरो बधिक कह ।
रूप के विधान कौ बखान कहा सूर सौं ।
सरस परस के बिलास जड़ जानै कहा,
नीरस निगोड़ौ दिन भरे भखि ऊर सौं ।।
चाह की चटक तैं भयौ न हिये खोंपन जाके,
प्रेम भरी कथा कहै कहा भकभूर सौं ।
चाहे प्रान-चातक सुजान घनआनन्द कौं ।
दैया कहूं काहूं कौं परै न काम कूर सौं ।"

बख्शी हंसराज :

बख्शी हंसराज का जन्म ~~१७५९~~ १७१६ में पन्ना में हुआ था ।[१] ये सखी संप्रदाय के अनुयायी थे । इनके स्नेह सागर, विरह विलास, रामचन्द्रिका और बारहमासा नाम से चार ग्रन्थ मिलते हैं । भ्रमरगीत की दृष्टि से इनका विरह विलास प्रबंध काव्य उल्लेखनीय है । यह दोहा चौपाई शैली में लिखा गया है । इसकी कथा अक्रूर के व्रजागमन से प्रारंभ होती है । संपूर्ण रचना १५ अध्यायों में विभक्त है । ११ से १४ अध्यायों में

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास : पं० रामचन्द्र शुक्ल
सं० २००२ - पृष्ठ : ३०७

भ्रमरगीत प्रसंग वर्णित है। संपूर्ण रचना में १७३५ छंद हैं जिनमें ६१२ छंद भ्रमरगीत सम्बंधी हैं। उद्धव का व्रजागमन, उनका योगमार्ग का उपदेश, कृष्ण के पास आकर व्रजदशा का वर्णन आदि विस्तार के साथ चित्रित किये गये हैं। १४वें अध्याय में भ्रमरगीत प्रसंग वर्णित है। संपूर्ण रचना में १७३५ छंद हैं जिनमें ६१२ छंद भ्रमरगीत सम्बंधी हैं। उद्धव का व्रजागमन, उनका योगमार्ग का उपदेश, कृष्ण के पास आकर व्रजदशा का वर्णन आदि विस्तार के साथ चित्रित किये गये हैं। इस रचना में कृष्ण कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर उद्धव को ब्रज भेजते हैं। उनका अनुमान है कि यदि वे स्वयं ब्रज जायेंगे तो गोपियां पुन: मथुरा न आने देंगी। इस प्रकार कृष्ण भावना से कर्तव्य को ऊंचा समझनेवाले चित्रित किये गये हैं।

पद्माकर :

रीतिग्रंथकार कवियों में पद्माकर का स्थान अत्यंत ऊंचा है। रीतिकालीन कवियों में बिहारी के पश्चात् अपनी कविता की रमणीयता को लेकर सर्वाधिक लोकप्रियता पद्माकर को प्राप्त है। ये तैलंग ब्राह्मण थे। उनका जन्म बांदा में सं० १८१० में हुआ था। अस्सी वर्ष का दीर्घायुष्य प्राप्त कर सं० १८९० में इनकी मृत्यु हुई। कवि ने भ्रमरगीत से सम्बद्ध कितने ही कवित्तों की रचना की है।[१] पद्माकर की गोपियां भाव विभोर होकर श्रीकृष्ण का निवास अपने हृदय में बताती हैं। मथुरा के कृष्ण तो संभवत: अन्य हैं -

'प्रानन के प्यारे तन ताप के हरन हारे,
नन्द के दुलारे ब्रज बारे उमहत है।
कहै पद्माकर उसजे उर अन्तर यों,
अन्तर चहे हूं जो न अन्तर चहत है।।
नैननि बसे हैं अंग अंग हुलसे है रोम,

१- पद्माकर ग्रंथावली : सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र

पृष्ठ	१६२	छंद	३८२
,,	१६४	,,	३८७
,,	१८६	,,	५०२
,,	२११	,,	६६५

रोमनि रसे हैं निकसे हैं को कहत हैं ।
ऊधौ वे गोविन्द कोऊ और मथुरा में यहां,
मेरे तो गोविन्द मोहि मोंहि में रहत हैं ।।"

कवि ने गोपियों के विरह का वर्णन भी प्रभावोत्पादक ढंग से किया है । त्रिभंगी श्याम और कुबड़ी कुब्जा की अनोखी जोड़ी का चमत्कारपूर्ण वर्णन कवि ने इन शब्दों में किया है -

"जैसे को तैसी मिलै, तब ही जुरत सनेह ।
ज्यों त्रिभंग तन स्याम को, कुटिल कूबरी देह ।।

भिखारीदास :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इनका कविताकाल सं० १७८५ से सं० १८०७ तक माना जा सकता है । ये प्रतापगढ़ के पास टयोंगा गांव के निवासी थे । रससारांश, काव्यनिर्णय, शृंगारनिर्णय आदि इनके सात ग्रंथ हैं ।[१] भ्रमरगीत से सम्बद्ध उनके कुछ छंद मिलते हैं , जिनमें बुद्धिवादिता का प्राबल्य है । गोपियां अपनी सौत कुब्जा का मुंह देखना चाहती हैं और उससे श्रीकृष्ण को वश में करने का मंत्र प्राप्त करना चाहती हैं -

"ऊधौ तहांई चलौ ले हमें जहां कूबरी कान्ह बसें इक ठोरी ।
देखिये 'रास' अघाई अघाई तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी ।।
कूबरी सों कछु पाइये मन्त्र लगाइये कान्ह सों प्रेम की डोरी ।
कूबर-भक्ति बढ़ाइये वृन्द चढ़ाइये वेदना चन्दन रोरी ।।"

ब्रजवासीदास :

ब्रजवासीदास वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी थे । ये वृन्दावन में निवास करते थे। इन्होंने ब्रजविलास नामक एक प्रबंध काव्य की रचना की है । यह दोहा चौपाई शैली में लिखा गया है । ब्रजविलास दो भागों में विभाजित है । पूर्वार्द्ध में श्रीकृष्ण जन्म प्रसंग से लेकर दानलीला तक का वर्णन है । उत्तरार्द्ध में गोपीलीला से लेकर उद्धव मथुरागमन तक

१- हिन्दी साहित्य का अतीत : विश्वनाथप्रसाद मिश्र
द्वितीय संस्करण - पृ० ५४०

का वर्णन है । भ्रमरगीत वर्णन इसी उत्तरार्द्ध की अंतिम तीन लीलाओं में मिलता है ।[१]

रसरासि :

रसरासि का मुख्य नाम रामनारायण था । ये जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह के आश्रित थे । जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह का शासनकाल सं० १८३५ से १८६० है । अत: कवि का रचनाकाल भी संभवत: यही रहा होगा ।

कवि की `रसिक पच्चीसी` कवित्त छंद में रची गई उद्धव गोपी संवाद विषयक एक सुन्दर कृति है । भाव वर्णन में कवि की मौलिकता दर्शनीय है । रचना की एक हस्तलिखित प्रतिलिपि ना.प्र.सभा में सुरक्षित है ।

शिवदास :

कवि शिवदास ने सं० १८८२ में `कृष्णायन` नामक ग्रंथ की रचना की है । रचना विभिन्न कांडों में विभाजित है और दोहा, सोरठा एवं चौपाई छंदों में लिखी गई है । इसके मथुराकांड में भ्रमरगीत प्रसंग का वर्णन मिलता है । उद्धव कृष्ण का संदेश लेकर ब्रज आते हैं । गोपियों के साथ उनका वार्तालाप होता है । गोपियां क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण को उपालंभ देते समय उनके रामावतार की चर्चा करती हैं । साहित्यिक दृष्टि से यह एक साधारण रचना है ।

ब्रजनिधि :

जयपुर नरेश सवाई प्रतापसिंह जी काव्य के क्षेत्र में `ब्रजनिधि` नाम से लिखते थे । इनका जन्म सं० १८२१ में हुआ था । ये १५ वर्ष की अवस्था में सं० १८३५ में राज-सिंहासन पर बैठे । इन्हें साहित्य, संगीत आदि कलाओं के प्रति विशेष अनुराग था । उदार हृदय के इस युवक नरेश ने अनेक कवि कोविदों को आश्रय प्रदान किया ।

कवि ब्रजनिधि ने कृष्ण भक्ति पर अनेक ग्रंथों की रचना की है । इनकी रचनाओं का संपादन `ब्रजनिधि ग्रंथावली` शीर्षक से पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने किया है जिसका

१- ब्रज विलास : प्रकाशक- श्याम प्रेस, हाथरस - सं० २००७

प्रकाशन ना.प्र.स. ने सं० १९९० में किया है। प्रस्तुत संग्रह की 'प्रीति पचीसी' नामक रचना भ्रमरगीत सम्बन्धी है। इसका प्रमुख कथ्य गोपी उद्धव संवाद है। गोपियों के मानसिक विचारों की व्यंजना बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से हुई है। गोपियों ने अपनी व्यथा का वर्णन करते हुए उपालंभों द्वारा योग मार्ग की भर्त्सना की है। भाव और भाषा की मौलिकता द्रष्टव्य है।

ग्वालकवि :

ग्वाल कवि व्रजभाषा के अच्छे कवि थे। इनका जन्म सं० १८५१ के लगभग माना जाता है। इन्हें कई भाषाओं का ज्ञान था। ये बहुत स्वतंत्र प्रकृति के जीव थे। अनेक राजा महाराजाओं का सम्मान प्राप्त होने पर भी ये किसी के आश्रित बनकर नहीं रहे। रीतिकालीन वातावरण से ये अत्यधिक प्रभावित थे। इन्होंने चार रीतिग्रन्थ लिखे हैं - रसिकानंद, रसरंग, कृष्ण जू को नख शिख और दूषण दर्पण। इनकी अन्य रचनाओं में यमुना लहरी, भक्त भावन, हम्मीर हठ और गोपी पच्चीसी आदि प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं का एक संग्रह 'ग्वाल रत्नावली' शीर्षक से सन् १९४५ में आलोक पुस्तकमाला, भारतवासी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है। इसका संपादन कवि किंकर ने किया है।

'ग्वाल रत्नावली' में भ्रमरगीत सम्बन्धी अनेक कवित्त मिलते हैं। गोपी पच्चीसी में २५ कवित्त हैं। गोपियों की विरह वेदना का वर्णन मार्मिक भाषा में हुआ है। गोपियां अपनी जली कटी बातें विभिन्न उपालंभों द्वारा प्रभावोत्पादक ढंग से कहती हैं।

हरिदास बैन :

हरिदास बैन द्वारा रचित 'गोपी श्यामसंदेश' ७६ छन्दों की रचना है। इसका रचनाकाल सं० १५७९ है। काव्य के अंत में स्वयं कवि ने परिचयात्मक रूप में इस प्रकार कहा है -

संवत अठाईस-सौ उनासिया तिथि तृतीया गुरुवार।
कीति कृस्ना जानि के गोस्वामी बैन कियो विस्तार ।।७५ ।।
स्वामी श्री हरिदास बंस में जानिये गुरु गोस्वामी राम प्रसाद।
जिन चरनन को रैनु हरिदास बैन सिरलाद ।। ७६ ।।

कथा का प्रारंभ उद्धव के ब्रजागमन से होता है। प्रस्तुत काव्य की एक अपूर्ण हस्तलिखित प्रतिलिपि ना.प्र.स० के संग्रहालय में मिलती है। यह रचना १४वें छन्द से प्राप्त है। उद्धव मथुरागमन के पश्चात् रचना समाप्त होती है।

सन्तदास :

कवि सन्तदास रचित 'गोपी स्नेह बारह खड़ी' नामक रचना मिलती है। खोज रिपोर्ट १९२६ के ४२८ 'ए' के अंतर्गत इस रचना का उल्लेख मिलता है। इसकी एक हस्तलिखित प्रतिलिपि ना.प्र.स. के संग्रहालय में सुरक्षित है। रचना का लिपिकाल सं० १८७३ दिया गया है। प्रतिलिपिकार का नाम ब्रजलाल ब्राह्मण है। रचना का प्रारंभ विरहिणी गोपियों की व्यथा के चित्रण द्वारा हुआ है। अंतिम छंदों में रचना के पठन-पाठन माहात्म्य का वर्णन मिलता है।

गंगादत्त :

श्री गंगादत्त द्वारा रचित 'लीला सागर' ग्रंथ मिलता है। यह एक प्रबन्ध काव्य है। रचना का लिपिकाल सं० १८८९ है। इस काव्य की रचना दोहा चौपाई शैली में हुई है। इसमें श्रीकृष्ण की सभी लीलाओं का वर्णन मिलता है। श्रीकृष्ण विरह व्यथिता गोपियों को सान्त्वना प्रदान करने के लिए उद्धव को ब्रज भेजते हैं। उद्धव गोपियों के प्रेम से प्रभावित होकर उन्हें ज्ञानोपदेश देते हैं। इनके ज्ञानमय उपदेश से गोपियां प्रभावित होती हैं और श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं के स्मरण द्वारा आनंदानुभव करती है। साहित्यिक दृष्टि से यह एक सामान्य रचना है।

श्री रत्न सिंह :

श्री रत्न सिंह जी का जन्म सं० १८६५ में हुआ था ये सीतामऊ के युवराज थे। इनके द्वारा रचित कृष्ण-भक्ति के काव्यों का सम्पादन 'नटनागर-विनोद' शीर्षक से पं० कृष्णबिहारी मिश्र ने किया है। प्रस्तुत रचना का विभाजन नौ उपशीर्षकों में हुआ है। 'उद्धव गोपी संवाद' शीर्षक से ६३ छंद मिलते हैं। इनकी परिगणना भ्रमरगीत काव्य परम्परा के अंतर्गत सहज ही की जा सकती है।

रघुनाथ दास रामसनेही :

श्री रघुनाथ दास रामसनेही, रचित 'विश्राम सागर' ग्रंथ मिलता है। इस ग्रंथ का प्रणयन काल सं० १९११ है। यह एक प्रकाशित रचना है जिसके पंद्रह संस्करण निकल चुके हैं। रचना के विषय के सम्बंध में इस प्रकार लिखा गया है - "जिसमें षट्शास्त्र, अठारह पुराणों का मत और श्री त्रिभुवनपति कृष्ण चन्द्रावतार के मत से निज लोकागमन पर्यन्त और श्री सच्चिदानंद परब्रह्म रामावतार की कथा बहुत से ग्रंथों के मत उत्तम छंदों में वर्णित है।" यह ग्रंथ दोहा चौपाई शैली में लिखा गया है। भ्रमरगीत प्रसंग नवम् अध्याय में मिलता है। प्रसंग के प्रारंभ में मंगलाचरण स्वरूप दोहा मिलता है -

"सुमिरि राम सिय संत गुरु गणपति गिरा सुख दानि।
भंवर गीत हरि मीत मत शुक कृत कहत बखानि।।

कथा का वर्णन भागवतानुसारी है। सर्ग के अंत में कृष्ण ने गोपियों को श्वासरूपिणी वेदों की ऋचाएं कहा है। श्वासोच्छ्वास के समान वे उनसे क्षण भर भी भिन्न नहीं हो सकतीं। अंत में प्रेम की महिमा का गान किया गया है।

प्रागन :

प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में कवि का नाम 'प्रागिनी' भी मिलता है। प्रागन-कृत भंवरगीत की सं० १८३६ एवं सं० १८४० की हस्तलिखित प्रतिलिपियां उपलब्ध होती हैं। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि डा० स्नेहलता श्रीवास्तव ने अपने शोध प्रबन्ध में इस भंवरगीत को बीसवीं शताब्दी की रचना माना है यह मत भ्रमपूर्ण सिद्ध होता है।[१] विश्वस्त प्रमाणों के अभाव में कवि के जीवन वृत्त पर प्रकाश डालना असंभव है।

प्रागनकृत भंवरगीत की कथा का अधिकांश भागवतानुकूल है। श्रीकृष्ण नंद और यशोदा के प्रेम के प्रति कृतज्ञता एवं गोपियों के लिए योग, संयम और ध्यान का संदेश देकर उद्धव को ब्रज भेजते हैं। भागवत की तुलना में प्रागन के उद्धव मितभाषी सन्देश वाहक हैं। भागवत में उद्धव का प्रथम साक्षात्कार नंद से होता है किन्तु प्रस्तुत भंवरगीत में

१- हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा : डा० स्नेहलता श्रीवास्तव, पृ० ४१२

उनका प्रथम मिलन यशोदा के साथ चित्रित किया गया है। भागवत में कुब्जा के प्रति कृष्ण के प्रेम का वर्णन नहीं है। सौत के रूप में वहां गोपियां लक्ष्मी का स्मरण करती हैं। भागवत में गुन-गुन करके आनेवाले भ्रमर को संबोधित करके गोपियां अन्योक्ति शैली में अपने भाव व्यक्त करती हैं जबकि प्रागन की गोपियां ऊधौ को ही भ्रमर का पर्याय मानकर मधुक अथवा मधुकर कहकर सम्बोधित करती हैं। यशोदा द्वारा उद्धव को वृषभान के घर राधिका तथा गोपियों की दशा देखने के लिए भेजने का वर्णन भी कवि की निजी उद्भावना है। भागवत में इस प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता।

प्रागनकृत भंवरगीत एक उपालंभ प्रधान गीतात्मक रचना है जिसमें विभिन्न रागों में आबद्ध ८६ पद प्राप्त होते हैं।[१] प्रत्येक पद स्वयं पूर्ण होने पर भी खंड काव्य की शृंखला के रूप में हैं। भावों की व्याप्ति नव मंडित कल्पना और सहज, सरस भाषायुक्त अनुपम-रचना है। गोपियों के व्यंग्य और तर्क कहीं-कहीं सूर के सदृश्य बन पड़े हैं। इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी गीतिकाव्यात्मकता है। केदार, मालव, गौरी, तोडी, मारु, वसंत आदि का प्रयोग सफलतापूर्वक हुआ है। राग और भोग की प्रमुखता के कारण शास्त्रीय गायन के विकास में पुष्टि सम्प्रदाय का सर्वोपरि योगदान रहा है। अन्य भ्रमरगीतकारों की भांति प्रागन भी संगीत के अच्छे ज्ञाता रहे होंगे ऐसा अनुमान सहज ही किया जा सकता है। समग्र रूप से प्रागन कृत भंवरगीत एक उत्कृष्ट साहित्यिक कृति है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :

भारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के अलौकिक प्रतिभापूर्ण कवि थे। उनका योगदान हिन्दी गद्य व पद्य में समान रूपेण उल्लेखनीय है। गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली का स्वीकार करते हुए भी उन्होंने पद्य में ब्रजभाषा के प्रयोग को ही उपयुक्त समझा। उन्होंने अनेक पद्य ग्रंथ रत्न प्रदान किये हैं। उनके साहित्य का संपादन 'भारतेन्दु ग्रंथावली' के नाम से ब्रजरत्न दास जी ने किया है। भारतेन्दु ग्रंथावली दो खंडों में विभक्त है।

१- प्रागनकृत भंवरगीत - सं० हरिमोहन मालवीय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

प्रथम खन्ड गद्यात्मक रचनाओं का संग्रह है और दूसरे खंड में पद्यात्मक रचनाएं संकलित हैं ।

भारतेन्दु पुष्टिमार्ग के अनुयायी थे । अत: कृष्णलीला सम्बन्धी अनेक रचनाएं मिलती हैं । इन रचनाओं में भ्रमरगीत प्रसंग पर पर्याप्त मात्रा में फुटकर पद प्राप्त होते हैं । प्रेम मालिका, प्रेमाश्रु वर्णन, प्रेम माधुरी, प्रेम तरंग, वर्षा विनोद, प्रेम-फुलवारी, कृष्ण चरित्र, और स्फुट, कविताओं में इस विषय के लगभग ५० पद मिलते हैं । इन पदों में माधुर्य, प्रासादिकता, प्रवाहिता और सरसता के सहज दर्शन होते हैं ।

गोकुल में आये हुए उद्धव का गोपियां स्वागत करती हैं । श्रीकृष्ण ने माता योग का संदेश भेजा है, जानकर उन्हें दु:ख होता है । इस सम्बन्ध में भारतेन्दु का एक लोक-गीत सा ब्रजभाषा और बनारसी शैली के सम्मिश्रण से बना पद मिलता है -

"मथुरा के देसवां से भेज लैं पियरवां रामा ।
हरि हरि ऊधौ लाए जोगवा की पाती, रे हरी ।।
सब मिलि आओ सखी सुनो नई बतियां रामा ।
हरि हरि पोहन भये कुबरी के संघाती, रे हरी ।।
छोड़ि परबार अब भसम रमाओ रामा ।
हरि हरि अब नहीं ऐहैं सुख की राती, रे हरि ।।
अपने पियरवा अब गये हैं पराये रामा ।
हरि हरि सुनत बबडे जुड़ाओ सब छाती, रे हरी ।।

ज्ञानमार्ग के उपदेशक उद्धव के प्रति गोपियों ने मार्मिक उपालंभों का प्रयोग किया है । भ्रमर का प्रवेश प्रत्यक्ष रूप में नहीं मिलता । उसका प्रवेश परंपरानुसार ही माना गया है । भ्रमर के माध्यम से किये गये व्यंग्य पूर्ण कथन द्रष्टव्य है :-

" भौंरा रे रस के लोभी तेरे को परमान ।
तू रसमस्त फिरत फूलन पर करि अपने मुख गान ।।
इत सौं उत डोलत बौरानौ किये मधुर मधु पान ।
"हरिचंद" घर घर के भौंरा तुम मतलब के मीत ।।
और
"सजन तेरी हो मुख देख की प्रीत ।
तुम अपने जो बन मदमाते, कठिन बिरह की रीत ।

जहां मिलत तहं हंसि हंसि बोलत गावत रस के गीत ।
'हरीचंद' घर घर के भौंरा तुम मतलब के मीत ।।

गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम है । वे उद्धव को ज्ञानोपदेश अन्यत्र देने के लिए कहती हैं :-

"ऊधौ जू सूधौ गयौ वह मारग ज्ञान की तेरे जहां गुदरी है ।
कोऊ नहीं सिख मानिहै ह्यां इक श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है ।।
ये ब्रजबाल सबै इकसी हरिचंद जू मंडली ही बिगरी है ।
एक जो होय तो ज्ञान सिखाइये कुप ही में यहां भांग परी है ।।"

हरिऔध :

भारतेन्दु युग के समाप्त होते ही पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय काव्य रचना में तत्पर हो चुके थे । गद्य और पद्य दोनों की भाषा एक ही होनी चाहिए इस विचार से प्रेरित होकर उपाध्याय जी ने संस्कृत वर्णवृत्तों में, अतुकान्त, कोमलकान्त पदावली से पूर्ण खड़ी बोली भाषा में 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य की रचना की । उसमें अक्रूर के आगमन से लेकर श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने और उनके वियोग में गोप-गोपियों के वियोग का पूरा चित्रण है । इसके अंतर्गत भ्रमरगीत प्रसंग का भी चित्रण हुआ है । प्रस्तुत काव्य की नायिका राधा को वासना और प्रेम की सीमाओं से ऊपर उठाकर विश्व-प्रेम और लोकहित की भावना व्यक्त करते हुए चित्रित किया गया है । भ्रमरगीत प्रसंग में प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, मैत्री आदि भावों की व्यंजना सफलतापूर्वक हुई है । गोपियों ने उपालंभ देने की अपेक्षा अपनी हृदयस्थ प्रणय-भावना की मार्मिक अभिव्यंजना की है :-

"श्यामा बातें श्रवणकर के बालिका एक रोई ।
रोते रोते अरुण उसके हो गये नेत्र दोनों ।
ज्यों ज्यों लज्जा विवश वह थी रोकती वारि धारा ।
त्यों त्यों आंसू अधिकतर थे लोचनों मध्य आते ।।"[१]

१- प्रिय प्रवास, चतुर्दश सर्ग छंद ५

वे उद्धव के ज्ञानमार्ग को समझने में अपनी असमर्थता प्रकट करती हैं -

"भोली-भाली ब्रज अवनि क्या योग की रीति जाने ।
कैसे बूझे अबुध अबला ज्ञान विज्ञान की बात ।।
देते क्यों हो कथन करके बात ऐसी व्यथाएं ।
देखूं प्यारा वदन जिससे यत्न ऐसा बता दो ।।[१]

काव्यान्त में हरिऔध जी ने कर्तव्य की महत्ता स्थापित करते हुए गोपियों को विश्वहित के लिए अपने सुख का बलिदान देते हुए चित्रित किया है । इस प्रकार 'प्रिय प्रवास' में व्यक्तिगत प्रेम की परिणति विश्व-प्रेम में की गई है किन्तु यह अतिशयोक्ति पूर्ण है -

" ये भी हैं भाव मम उर के और ये भाव भी हैं ।
प्यारे जीवें जग हित करें, गेह चाहे न आवें ।।[२]

प्रस्तुत रचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कृष्ण के माखन चुराने वाले और विलासी रूप का चित्रण न कर समाज सुधारक के रूप में वर्णन मिलता है । गोपियां भी कृष्ण के लोकोपकारी कार्यों के कारण शोक संतप्त बनकर आंसू बहाती हैं । उद्धव भी ज्ञान का उपदेश न देकर लोक सेवा का उपदेश देने जाते हैं ।

सत्यनारायण 'कविरत्न' :

आधुनिक युगीन भ्रमरगीत परम्परा में कवि श्री सत्यनारायण 'कविरत्न' रचित 'भ्रमरदूत' भी एक प्रमुख उल्लेखनीय रचना है । इसमें न उद्धव हैं, न गोपियां, न ज्ञानयोग और भक्ति का वाद-विवाद है, न सगुण निर्गुण का खंडन-मंडन । यशोदा माता ही भ्रमर को दूत बनाकर कृष्ण के पास भेजती हैं । देश की सामाजिक, राजनीतिक, अधोगति का चित्रण ही इसका मुख्य उद्देश्य है । पुरानी परम्परा को छोड़कर कवि ने यशोदा को भारतमाता के रूप में चित्रित किया है । यह संदेश मथुरावासी कृष्ण के पास

१- प्रिय प्रवास-चतुर्दश सर्ग छंद-५

२- वही, षोडश सर्ग- छंद-६८

भेजा गया है।[१] भ्रमरदूत की यह भी एक विशेषता है कि इसका संदेश मथुरा से गोकुल को न जाकर गोकुल से मथुरा को जाता है। दूसरी विशेषता यह है कि यह संदेश किसी गोपी द्वारा न भेजा जाकर स्वयं यशोदा द्वारा भेजा गया है। इस प्रसंग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस संदेश को कृष्ण स्वयं भ्रमर का रूप धारण कर ले जाते हैं। उनका भ्रमररूप धारण कर पुत्र-वियोग-व्यथिता माता के पास आने का वर्णन इस प्रकार हुआ है -

"विलपति कलपति अति जबै लखि जननी निज स्याम।
भगत भगत आए तबै भाए मन अभिराम ।।
भ्रमर के रूप में।

माता यशोदा ने भ्रमर और कृष्ण में सादृश्य समझकर इसी के द्वारा अपना संदेश भेजा है -

'तेरो तन घनश्याम, श्याम घनश्याम उतै सुन'

माता के रूप में यशोदा ने अपने व्यक्तिगत सुख दुःखों का वर्णन नहीं किया, अपितु भारत जननी के रूप में देश की राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का मार्मिक वर्णन उपस्थित किया है। भारतीयों की दारुण दुर्दशा का वर्णन अत्यंत मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। भाव सौन्दर्य के साथ-साथ भाषा में संगीतात्मकता एवं कोमलता का पर्याप्त संतुलन मिलता है। अपने समय की विषम परिस्थितियों के चित्रण द्वारा कवि ने एक नवीन दृष्टिकोण उपस्थित किया है।

मैथिलीशरण गुप्त :

भाव और भाषा-शैली की दृष्टि से गुप्त जी आधुनिक हिन्दी कविता के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं। जिस प्रकार रामभक्त कवि तुलसीदास ने 'कृष्ण - गीतावली' में भ्रमर गीत जैसे मार्मिक प्रसंग पर प्रकाश डाला है उसी प्रकार भारतीय

१- अष्टछाप के कवि नंददास : डा० कृष्णदेव झारी,
प्रथम संस्करण - पृष्ठ ११७

संस्कृति के आख्याता रामोपासक कवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी 'द्वापर में' गीति काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत प्रसंग का मार्मिक निरूपण किया है। भ्रमरगीत की दृष्टि से प्रस्तुत रचना के 'कुब्जा', 'उद्धव' एवं 'गोपी खंड' द्रष्टव्य हैं। आत्मकथात्मक शैली में निरूपित गोपी-उद्धव संवाद में भ्रमरगीत की सूक्ष्म अभिव्यक्ति मिलती है। निराकार योग की अपेक्षा साकार सगुणरूप को ही अधिक महत्व प्रदान किया गया है। गुप्त जी की गोपियों के शब्दों में यदि कहा जाय तो :-

"ज्ञान-योग से हमें हमारा यही वियोग भला है,
जिसमें आकृति, प्रकृति, रूप-गुण नाट्य कवित्व कला है।"[१]

गोपियां ज्ञानमार्ग के पचड़े में पड़ने की अपेक्षा विरह को ही अच्छा समझती हैं। कुब्जा का चरित्र चित्रण भी सहानुभूतिपूर्वक किया गया है और नारी के गौरव की रक्षा का प्रयत्न किया गया है। गोपियों के मुख से ईर्ष्यापूर्ण अभिव्यक्ति द्वारा कुब्जा की भर्त्सना नहीं कराई गई। गोपियां अपने प्यारे कृष्ण का ध्यान रखने के लिए उसे उद्धव जी के साथ संदेश भेजती हैं :-

"यौवन-सा शैशव था उसका, यौवन का क्या कहना ?
कुब्जा से विनती कर देना, उसे देखती रहना।"

इस प्रकार द्वापर में आत्म-विश्लेषण 'ड्रामेटिक मानोलोग' की शैली का प्रयोग किया गया है जिसमें गोपियां, यशोदा, राधा, कुब्जा आदि अपनी अपनी मनोवृत्तियों का चित्रण करती हैं।

जगन्नाथदास रत्नाकर :

वर्तमान युग के ब्रजभाषा -कवियों में रत्नाकर जी का स्थान सर्वोच्च है। "इनकी कविता बड़े-बड़े पुराने कवियों के टक्कर की होती है। पुराने कवियों में भी इनकी सी

१- द्वापर, गोपीखंड- पृष्ठ १८२ सं० २०१२ वि.

सूझ और उक्ति वैचित्र्य बहुत कम देखा जाता है। भाषा भी पुराने कवियों की भाषा से चुस्त और गढ़ी हुई होती थी। ये साहित्य तथा ब्रजभाषा के बड़े मर्मज्ञ माने जाते थे।"[१] इन सभी गुणों से विभूषित उनका 'उद्धव शतक' भ्रमरगीत परम्परा में परिगणित एक अत्यंत सुन्दर काव्य रचना है। उन्होंने अपनी इस रचना में अपने पूर्ववर्ती सभी भ्रमरगीत काव्य की विशेषताओं का समन्वय करने का प्रयत्न किया है। सूर की तीव्र संवेदनायुक्त भावात्मकता, नंददास की तार्किकता और रीतिकालीन चमत्कारिकता आदि सभी गुणों का समन्वय उनकी इस रचना में परिलक्षित होता है। अलंकारों का आधिक्य, ऊहात्मक विरह वेदना, प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण आदि में रीतिकालीन प्रवृत्तियों का विशेष प्रभाव है।

तुल्यानुराग प्रेम की प्रतिष्ठा इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। प्रेम दोनों ओर पलता है। दीप भी जलता है। पतंग भी जलता है। प्रेम में दो हृदयों के स्पंदन भिन्न होने पर भी आवाज एक होती है। 'उद्धव शतक' में सगुण निर्गुण विवाद के साथ ही गोपियों के प्रेम की मार्मिक व्यंजना मिलती है। एक ओर जहां सूर के हृदय की बेबसी है वहां दूसरी ओर नंददास का तर्क और परिहास भी है। श्रीकृष्ण और ब्रह्म एक होने पर भी भक्त हृदय अद्वैत भावना को स्वीकार नहीं कर सकता। एक भावुक हृदय प्रेमाभिव्यक्ति के लिए द्वैत का व्यवधान चाहता है। उद्धव शतक की गोपियां द्वैत सम्बन्ध को शाश्वत समय तक बनाये रखने के लिए उत्सुक हैं। रूप-रंगहीन भावना में आसक्ति संभव नहीं। अत: वे श्रीकृष्ण के मूर्त रूप की पुजारिन हैं और उसकी अनन्त पूजा के लोभ में मुक्ति भी नहीं चाहतीं। हृदय की कोमल भावनाओं के सामने तर्क नहीं चल सकते। रत्नाकर जी ने गोपियों की कोमलतम भावनाओं के अनेक मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। उद्धव के ज्ञानोपदेश की गोपियों के कोमल हृदयों पर जो प्रतिक्रिया हुई उसके भी अनेक मार्मिक एवं मनोरम चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। गोपियों के नंदलाल ब्रह्म और मुक्ति से भी श्रेष्ठ हैं। अन्त में उद्धव को गोपियों के सामने परास्त होना पड़ता है। अपने ज्ञान संदेश को भूलकर प्रेम रस में थके हुए वे मथुरा लौटते हैं।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल
संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण सं० २००२ वि० पृष्ठ ५८४

'उद्धव शतक' की रचना रीतिकालीन आदर्श अर्थात् कवित्तों में हुई वाक् चातुर्य और तर्क पद्धति में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है। शब्दों के प्रभावशाली प्रयोग में वे अद्वितीय हैं। खड़ी बोली के युग में ब्रजभाषा में एक सफल रचना द्वारा उसकी श्रुति मधुरता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

द्वारिकाप्रसाद मिश्र :

कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन को लेकर मिश्र जी ने 'कृष्णायन' का प्रणयन किया है। 'रामचरितमानस' के समान कृष्णायन भी सात कांडों में विभक्त एक प्रबन्ध काव्य है। शील, शक्ति और सौन्दर्य से युक्त श्रीकृष्ण की महिमा का गान प्रस्तुत रचना में किया गया है। इसकी रचना अवधी भाषा में हुई है और दोहा, चौपाई एवं सोरठा छंदों का प्रयोग किया गया है।

'कृष्णायन' के मथुरा खंड में भ्रमरगीत प्रसंग का वर्णन मिलता है।[१] कुशल कवि ने इसमें युगानुकूल परिवर्तन किया है। श्रीकृष्ण जरासंध के आक्रमण की आशंका से ब्रज जाने का विचार छोड़ देते हैं। भयग्रस्त मथुरावासियों की रक्षा को वे प्राधान्य देते हैं और उसे अपना प्रथम कर्तव्य समझते हैं। अत: स्वयं ब्रज जाने का विचार छोड़ देते हैं। वे मथुरा की प्रजा को लेकर द्वारिका आ जाते हैं और उद्धव जी को अपना संदेश लेकर ब्रज भेज देते हैं। उद्धव जी को ब्रज भेजते समय "जाहु अबहिं ब्रज" तीन शब्द ही कहे गये हैं। उद्धव जी श्रीकृष्ण के इन शब्दों का मर्म समझ लेते हैं और उनका प्रेम-संदेश ब्रज में ले जाते हैं। उद्धव-गोपी संवाद में परम्परा का अनुसरण किया गया है। उद्धव-राधा दर्शन का वर्णन कवि ने चमत्कारिक ढंग से चित्रित किया है। यह कवि की नवीन उद्भावना है। इसमें भ्रमर प्रवेश का वर्णन प्रत्यक्ष रूप से नहीं मिलता।

रामशंकर शुक्ल 'रसाल' :

डा० रसाल कुशल कवि होने के साथ-साथ ब्रजभाषा के विशेषज्ञ हैं। उनका

१- कृष्णायन : विश्वभारती कार्यालय, चारबाग, लखनऊ।
सं० २००२- पृष्ठ २१६ से २२७

जन्म सं० १९५५ में मऊ जिला बांदा में हुआ । अलंकार प्रियता उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है । इस पर भी उनके काव्य में गहनता और गंभीरता का अभाव नहीं । `भ्रमरगीत` काव्य परम्परा में उनकी `गोपी-उद्धव संवाद` रचना उल्लेखनीय है । यह रचना कवित्त और सवैयों में लिखी गई है । रसाल जी की गोपियां भावुकता के साथ-साथ बौद्धिक चेतना से युक्त हैं । वे शास्त्रीय तर्कों द्वारा ज्ञान पर भक्ति और प्रेम की विजय सिद्ध करना चाहती हैं । इस काव्य के प्रणयन द्वारा ब्रजभाषा की माधुर्य व्यंजना और तर्क पद्धति द्वारा भ्रमरगीत परम्परा को आगे बढ़ाने में कवि को निश्चय ही सफलता मिली है ।

बलरामप्रसाद मिश्र `द्विजेश` :

द्विजेश जी का जन्म सं० १९२९ वि० में उत्तर प्रदेश के मिश्रौलिया गांव में हुआ था । उनकी कुछ रचनाओं का संग्रह `द्विजेश-दर्शन` के नाम से प्रकाशित हुआ है । इसमें `गोपी-उद्धव संवाद` पर ११ छंद ब्रजभाषा में मिलते हैं ।[१] इनमें गोपियों की विरह व्यथा के वर्णन के साथ साथ योगमार्ग के प्रति अनिच्छा का भाव व्यक्त हुआ है :-

आये हो जु ऊधो सूधो मन के बताओ तुम्हीं ,
यों अजोगता सों कहो जोग कौन जोवैगो ।
व्याधि सों वियोग जो असाध विरहानल को,
तो सुसुप्त निद्रा को समाधि मैं को सोवैगो ।
जोग चित को निरोध ह्वै है कहा समबोध,
क्रोध वो विरोध कुबजा पै कौन खोवैगो ।
जिन इन प्रानिन के प्राननि के प्रान तब,
ऐसे बिन प्रान प्रानायाम कैसे होवैगो ।

तुलसीदास शर्मा `दिनेश` :

बंबई निवासी भक्त कवि `दिनेश` की `श्याम सतसई` में ६६ दोहे भ्रमरगीत

१- द्विजेश -दर्शन : बलरामप्रसाद मिश्र `द्विजेश`
प्रकाशक : जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन, बस्ती ।
सं० २०१३ वि.

से सम्बद्ध हैं ।[१] 'श्याम सतसई' के सातवें शतक में कवि ने 'गोपियां' शीर्षक से 'गोपी-उद्धव' संवाद का वर्णन किया है । विरहिणी गोपियां श्याम के प्रति अपनी अनन्यता और ज्ञान-योग मार्ग की निरर्थकता का वर्णन करते हुए कहती हैं :-

'ऊधौ । हमरे मन बसन, रच गयो स्यामल रंग ।
दूजो रंग पकरै नहीं, व्यर्थ सकल यह ढंग ।।
ऊधो ! तुम हम कैं दियो, अतिसय ऊंचो ज्ञान ।
बिरह-कचि मैं हम घंसी, हमरी पहुंच तहां न ।।

व्यक्तव्य

श्यामसुन्दरलाल 'दीक्षित' :

प्रेम दोनों ओर पलता है । अत: विरह-व्यथा भी उभय पक्ष को समान रूप से प्रभावित करती है । अधिकांश भ्रमरगीतकारों ने गोपियों के विरह का तो बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है किन्तु श्रीकृष्ण के हृदय को टटोलने का प्रयत्न नहीं किया । यद्यपि रत्नाकर जी ने 'उद्धव-शतक' में श्रीकृष्ण के मनोभावों के चित्रण द्वारा तुल्यानुराग की प्रतिष्ठा की है किन्तु यह पर्याप्त नहीं । श्यामसुन्दरलाल दीक्षित कृत 'श्याम सन्देश' में श्रीकृष्ण के हृदय का उद्घाटन विशेष रूप से किया गया है । डा० सम्पूर्णानन्द ने उचित ही कहा है -'हमारे यहां विरहिणी की व्यथा को द्योतन करने की प्रथा है । पुरुष संयम करके अपने भावों को थाम लेता है, ऐसा मानकर उसके हृदयोद्गारों पर प्राय: परदा डाल दिया जाता है । हृदय खोलने में पुरुष का गौरव गिरता है, ऐसा माना जाता है । इस पुस्तक में, इस लीक को तोड़कर, कृष्ण के भावों को ब्रज से दूर पड़ जाने पर उनके मन की टीस को व्यक्त करने का यत्न किया गया है । यह प्रयास अच्छा है । कृष्ण की वेदना को जाने बिना राधेश्याम का यथार्थ चित्र नहीं बनता ।[२] पुरुष हृदय की व्यथा के मार्मिक चित्रण द्वारा कवि ने साहित्यिक प्रगतिशीलता का परिचय दिया है । 'श्याम संदेश' काव्य तीन भागों में विभाजित किया

१- श्याम सतसई, तुलसीराम शर्मा 'दिनेश', प्रकाशक: गंगाराम अग्रवाल, बम्बई ।
२- श्याम संदेश : श्यामसुन्दरलाल दीक्षित, भूमिका : डा० सम्पूर्णानन्द

गया है - मधुपुरी, स्वतंत्रता, दिवस और श्याम संदेश । `स्वतंत्रता दिवस` सर्ग में आधुनिक स्वातंत्र्य भावों की कुशल अभिव्यक्ति मिलती है । भ्रमरगीत के प्रचलित प्रसंग को नवीन ढंग से प्रस्तुत करने का कवि ने सुन्दर प्रयास किया है ।

हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत की यह काव्यधारा जो भक्तिकालीन साहित्य की उर्वर भूमि में पनपी थी नूतन भाव सम्पत्ति से समृद्ध होकर आज भी अजस्र रूप से प्रवाहित हो रही है । अनेक कवि कोविदों ने स्वतंत्र या स्फुट रचनाओं द्वारा भ्रमरगीत परिपाटी के पुनीत मंदिर में अपनी पुष्पांजलि अर्पित की है । समय के परिवर्तन के साथ-साथ विभिन्न कवियों ने उसको नवीन नेत्रों से देखकर नवीन सामग्री से सजाया है । इन प्राचीन तथा नवीन भ्रमरगीतों में भाषा, शैली तथा विषय वस्तु की दृष्टि से जो अन्तर है वह निश्चय ही भ्रमरगीत काव्य की स्वस्थ परंपरा का द्योतक है ।

हिन्दी काव्य में भ्रमरगीत की परंपरा के निरूपण के उपरान्त अब हम गुजराती काव्य में भ्रमरगीत की परंपरा का विवेचन करेंगे । प्रथम अध्याय में हमने देख ही लिया है कि दोनों भाषाओं में रचित भ्रमरगीत काव्य का मूल स्रोत एक ही है । अब परंपरा-विवेचन से हम दोनों भाषाओं के भ्रमरगीत काव्य की विशिष्ट प्रवृत्तियों से भी अवगत हो जाएंगे । मूल स्रोत के एक होने से भी हम देखेंगे कि दोनों भाषाओं के कवियों ने किस प्रकार अपने अपने भ्रमरगीतों में अपनी प्रतिभा का उन्मेष साम्य अथवा वैषम्य रूप में किया है ।

गुजराती साहित्य में भ्रमरगीत काव्य-परंपरा :

जिस समय हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा अपनी सरस स्निग्धता से जन-मन का रंजन कर रही थी और जन साधारण की सगुण के प्रति आस्था की नींव दृढ़ कर रही थी, उसी समय गुजरात के कृष्ण-भक्ति काव्य में `भ्रमरगीत` की स्नेह सिक्त काव्यधारा लोगों के मरु हृदयों में सुधाकणों की वृष्टि कर रही थी । इस अध्याय में हम गुजराती साहित्य में भ्रमरगीत काव्य की परंपरा का निरूपण करेंगे ।

गुजरात के कवियों ने भागवत के गोपी-उद्धव संवाद प्रसंग को प्रेम लक्षणा भक्ति के छ रंग में रंठकर `भ्रमरगीता` के नाम से स्वतंत्र काव्य का विषय बनाया है। हिन्दी की `भ्रमरगीत` काव्य परंपरा के समान गुजराती में यही काव्य परंपरा `भ्रमरगीता` की संज्ञा से लगभग उसी समय में प्रारंभ होती है। यद्यपि, दोनों का प्रतिपाद्य विषय एक है तथापि `गीत` और `गीता` जैसी उत्तर पद की शब्दगत भिन्नता भ्रम का आविर्भाव कर सकती है। अतएव इसका विशेष स्पष्टीकरण अपेक्षित है। गुजराती के अधिकांश कवियों ने भगवत् गीता की परंपरा का पालन करते हुए `भ्रमरगीत` को `भ्रमरगीता` के रूप में लिखा है। ऐसा लगता है कि `भ्रमरगीत` में उद्धव गोपी का जो उल्लेख है वह संवादात्मक ही है और गीता में कृष्ण और अर्जुन भी संवादात्मक रूप में ही आए हैं। अत: इन कवियों ने हिन्दी में प्रयुक्त `भ्रमरगीत` को भ्रमरगीता कहा है। इस प्रकार भ्रमरगीता नामकरण द्वारा गुजराती कवियों ने भगवत्गीता जैसे अनुपमेय ग्रंथ के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति का परिचय दिया है। गीता शब्द से प्रयोजन है गाया हुआ। गुजरात के प्रसिद्ध आचार्य आनंदशंकर ध्रुव का मत इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है। अंग्रेजी में गीता का अर्थ `द लाईस सांग्स` किया गया है किन्तु उसका यथार्थ अनुवाद `सैंग बाई द लाई` होना चाहिए।[१] गीत के समान गेयता का भाव गीता शब्द में निश्चय ही विद्यमान है। अत: `गीत` और `गीता` जैसे शब्द गत भेद के कारण संदेह के लिए कोई अवकाश नहीं रहता। भ्रमरगीत एवं भ्रमर-गीताओं का प्रतिपाद्य विषय एक होने से हम कह सकते हैं कि दोनों शब्द एक ही अर्थ में व्यवहृत किये गये हैं। अब हम यहां गुजराती भाषा के उन गण्यमान कवियों की क्रमश: चर्चा करेंगे जिन्होंने अपने काव्य में `भ्रमर गीत` प्रसंग को स्थान दिया है।

नरसिंह मेहता (सं० १४७० से १५३६) :

गुजराती भाषा में भक्तिकाल के प्रवर्तक और प्रथम उल्लेखनीय कवि नरसिंह मेहता हैं, इसीलिए इतिहासकारों ने उन्हें `आद्य कवि भूषण` या भक्ति काव्य गंगा का गंगोत्री शिखर कहकर गौरवान्वित किया है। मध्यकालीन भक्त कवियों में उनका

१- आपणो धर्म : आनन्दशंकर ध्रुव, पृ० १२६

स्थान सर्वोच्च है। अनेक परवर्ती भक्त कवियों पर उनका प्रभाव परिलक्षित होता है। कवि नरसिंह मेहता के कविता-काल के सम्बंध में मतैक्य नहीं है। अधिकांश विद्वानों द्वारा उनका जीवनकाल सं० १४७० से १५३६ तक माना गया है।[१] आचार्य आनन्दशंकर ध्रुव उनके काव्य पर कबीर और चैतन्य सम्प्रदाय का प्रभाव मानते हैं। जबकि कन्हैयालाल मुन्शी आनन्दशंकर ध्रुव के साथ सहमत नहीं होते। प्रो० अनन्तराय के अभिप्राय में नरसिंह ने जयदेव के `गीत गोविन्द` का अनुसरण किया हो यह अधिक संभव है। नरसिंह पर चैतन्य एवं वल्लभाचार्य के प्रभाव की धारणा को आधुनिक विद्वानों ने भ्रामक कहा है। उन पर भागवत पुराण और जयदेव के `गीत गोविन्द` का ही अधिक प्रभाव बताया जाता है। इन दोनों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए कवि ने उनका उल्लेख अपनी कृतियों में कई बार किया है। श्री केशवराम शास्त्री ने `भणे नरसैयो` और `नरसैया ना स्वामी` शब्द समुच्चयों के आधार पर उन पर महाराष्ट्र के नामदेव जैसे भक्तों की विट्ठल भक्ति का प्रभाव होने का अनुमान किया है।[२]

नरसिंह का कौटुम्बिक जीवन अत्यंत संघर्षमय माना जाता है। बाल्यावस्था में ही माता-पिता के देहावसान के कारण उन्होंने अपने बड़े भाई के यहां आश्रय ग्रहण किया। युवक नरसिंह को विद्याध्ययन की अपेक्षा साधु संतों के सत्संग में अधिक समय यापन करते देखकर, कहा जाता है उनकी भाभी ने उनके अकर्मण्य जीवन पर करारा व्यंग्य किया। परिणाम स्वरूप यह भावुक युवक घर छोड़कर जंगल में चला गया और शिव की आराधना करने लगा। भक्त की करुणाभरी पुकार से प्रसन्न होकर आशुतोष महादेव ने उन्हें श्रीकृष्ण की रास-लीला के दर्शन कराये। रास लीला के दिव्य दर्शन से द्रवीभूत कवि ने अपने आपको सदा-सर्वदा के लिए श्रीकृष्ण के चरणों का दास बना दिया।

१- साहित्य नो विश्वकोष- सं० विजयराम क. वैद्य, प्रथमावृत्ति मई १९६७ पृष्ठ १३२ प्रकाशक : बालगोविन्द कुबेरदासनी कुं०। गांधीमार्ग, अहमदाबाद-१।

२- कवि चरित्र भाग १-२ : केशवराम शास्त्री, द्वितीय संस्करण १९५२ ई० पृष्ठ ४४, प्रकाशक : गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद।

नरसिंह भगवान में पूर्ण श्रद्धा रखने वाले भक्त रत्न थे । अपने गार्हस्थ्य जीवन में भी वे रासेश्वर श्रीकृष्ण के गुण संकीर्तन में तन्मय रहते थे । ऐसा कहा जाता है कि भक्त-वत्सल भगवान श्रीकृष्ण ने पिता का श्राद्ध, पुत्र एवं पुत्री के विवाह जैसे प्रसंगों पर आश्चर्यपूर्ण ढंग से उनकी सहायता की थी । उनके जीवन के कई चमत्कारपूर्ण प्रसंगों को लेकर परवर्ती कवियों ने लघु आख्यानात्मक काव्य लिखे हैं । नरसिंह जाति-पांति के भेद में विश्वास नहीं करते थे । एक बार हरिजनों का निमन्त्रण पाकर वे हरिजन वास में भजन-संकीर्तन करने सहर्ष चले गये । इस पर नागर ब्राह्मणों ने उन्हें अपमानित कर जाति से बहिष्कृत कर दिया था । नरसिंह महेता सही अर्थ में वैष्णव थे । उनकी कविता का स्रोत हृदय से प्रस्फुटित हुआ है । जिसमें कहीं लेशमात्र भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते । हृदय से निःसृत भावधारा ही हृदय को परिप्लावित कर सकती है । मीराबाई के पदों की भांति उनके पद आज भी ब्राह्ममुहूर्त में गाये जाते हैं ।

कवि नरसिंह द्वारा रचित 'शामलदास नो विवाह', 'रास-सहस्त्र पदी', 'कृष्ण-लीला ना पद', 'भक्ति ज्ञाननां पद', 'सुदामा चरित्र', 'गोविन्द गमन' आदि कृतियां उल्लेखनीय हैं । सर्व प्रथम लघु आख्यान कर्ता के रूप में उनका नाम आदर के साथ लिया जाता है । उनका सुदामा चरित्र लघु आख्यान काव्य का अनुपम उदाहरण है । नरसिंह के आत्मचरित्रात्मक काव्य भी आख्यानात्मक हैं जो पद शैली में लिखे गये हैं । कृष्ण-लीला के काव्यों में 'रास-सहस्त्रपदी' का विषय भागवत की 'रास पंचाध्यायी' के आधार पर लिखित होने पर भी उसमें कवि की कमनीय कल्पनाओं का वैभव दर्शनीय है । यद्यपि कृति का नाम 'सहस्त्रपदी' है किन्तु इस समय सवा सौ से अधिक पद उपलब्ध नहीं होते । वेणुनाद से उद्भूत गोपियों की विरह-व्याकुलता, उत्कट कृष्णानुराग, सुकुमार रूप, वस्त्रालंकार, रासमण्डल का वृत्ताकार दृश्य, 'सुन्दर गोपी कंचनमाला वच मां मरकत मणि गोविन्द' जैसी आलंकारिक पंक्तियां पाठक के समक्ष सजीव चित्र उपस्थित कर देती हैं । जयदेव के 'गीत गोविन्द' के समान ही 'राधा-कृष्ण' के संयोग एवं वियोग के चित्रण में कवि ने अपनी काव्य कुशलता का परिचय दिया है । कृष्ण के भुजपाश में आबद्ध राधा का वर्णन ब्रष्ट द्रष्टव्य है -

'कनक बेल तमाल लपटी जाणी ई धनदायी ।'

नरसिंह के शृंगार वर्णन में कल्पना का अद्भुत सौन्दर्य एवं शब्द-माधुर्य दोनों का सुष्ठु समन्वय मिलता है। राधा विरह के द्वादश मास के वर्णन में वैशाख से भाद्रपद तक का प्रकृति वर्णन अत्यंत सुन्दर बन पड़ा है।

नरसिंह द्वारा वर्णित कृष्णलीला का प्रधान रस शृंगार है। इस शृंगार वर्णन के सम्बन्ध में कवि की निम्नलिखित पंक्तियां उनके काव्यादर्श को समझने में सहायक सिद्ध होती हैं -

"तमे जाणो विषय रस गायो, मारो हरि शुं प्रेम उभराय।
हरिलीला शणगार ज गातां, विषयी नहि कहेवाय।।"

इन पंक्तियों में शृंगार वर्णन के अंतर्गत कवि द्वारा अभिप्सित अर्थ द्रष्टव्य है। उनके शृंगार को मात्र लौकिक धरातल का समझकर आलोचना करना असंगत होगा। गोपियां अर्थात् विविध वृत्तियां, उनका आत्मा के प्रति आकर्षण रास और उनकी सम्मिलित क्रीड़ा आत्मा का परमात्मा के साथ योग है। उनके काव्य में आद्यन्त गोपीभाव परिलक्षित होता है।

भ्रमरगीत के सम्बंध में कवि नरसिंह मेहता की कोई स्वतंत्र रचना उपलब्ध नहीं होती। विद्यापति की पदावली में जिस प्रकार भ्रमरगीत काव्य के स्फुट पद मिलते हैं उसी प्रकार नरसिंह में भी भ्रमरगीत सम्बन्धी कतिपय पद अवश्य मिलते हैं। इन पदों में उपालंभयुक्त गोपी विरह का वर्णन मिलता है। नंद के द्वार पर उद्धव के रथ को देखकर गोपियों के मन में आक्रोशयुक्त जो भाव उठते हैं उनका कवि ने भागवत की छाया ग्रहण कर मार्मिक चित्रण किया है :-

"रथ ने तो दीठो रे, नंद जी ना आंगणे रे,
त्यारे मुने पड़ी पेटड़ीआ मां काल;
प्राण हमारो रे प्रथम लेई गयो रे,
हवे शुं लेवार आव्यो काल ?[१]

१- वैष्णवगीताओ : गोपी संदेश पद १ पृष्ठ ४५
सं० डा० मंजुलाल मजुमदार और डा० चीमनलाल म. वैद्य

उद्धव जी के साथ गोपियों के वार्तालाप का चित्रण द्रष्टव्य है। गोपियों ने अपने प्रियतम कृष्ण के काली कुब्जा के साथ विवाह को अविवेकपूर्ण कार्य कहकर व्यंग्य किया है -

"उधव ! मुज सामुं न जोयुं रे, हरि गया वाह्मिने रे ।
दिसलड़ी अमारी बोधव, गया विसारी रे
तां हां शुं जैइने परणा रे कुब्जा काणिने रे
रसिला प्रहूणा ने लइ गया वाह्मिने रे ।"[1]

नरसिंह की गोपियों में असूया भाव की अभिव्यक्ति भी मिलती है। "मुरली का जो स्वर गोकुल में गूंजता था वह अब कुब्जा के घर बजता होगा" इस विचार से उद्भूत गोपी-हृदय की व्यथा द्रष्टव्य है :-

"मुरली ने स्वरे मने हरि सांगरीया,
एवो मधुरो वंश बाजे कुब्जा ने मंदिरियां ।"[2]

नरसिंह के भ्रमरगीत सम्बन्धी पदों में गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति किया गया एक अन्य उपालंभ भी द्रष्टव्य है। श्रीकृष्ण के प्रति व्यंग्यपूर्वक कहा गया है कि हमने तुम्हारे सही स्वरूप को पहचान लिया है :-

"काहना रे तारी जातलड़ी जाणी, जगत मां कोई नहि पाये पाणी"[3]

इस प्रकार गुजराती 'भ्रमरगीत' काव्य का आदि रूप नरसिंह के पदों में स्पष्ट मिलता है। भ्रमरगीत सम्बंधी स्फुट पदों के रचयिता नरसिंह गुजराती के विद्यापति हैं।

१- वैष्णवगीताओ : गोपी संदेश- पद २
२- वही, पद ३
३- वही, पद ११

भागवत के दशम स्कन्ध के उनतालीसवें अध्याय में अक्रूर के साथ श्रीकृष्ण के मथुरागमन का प्रसंग आता है जिसके आधार पर कवि ने `गोविन्द गमन` काव्य की रचना की है। इसमें कवि द्वारा चित्रित गोपीहृदय का भाव विस्तार निश्चय ही द्रष्टव्य है। कृष्ण विरह के समाचार सुनकर गोपियां भाव-विह्वल हो जाती हैं। गोपियों के हृदय की वेदना का मार्मिक चित्रण कवि ने किया है। प्रिय-प्रवास के समाचार सुनकर राधा के मन पर जो खिन्नता छा जाती है, उसका चित्रण कवि के संवेदनशील हृदय ने अत्यंत सहानुभूतिपूर्वक किया है। असह्य वेदनायुक्त राधा का हृदय मिलनोत्कंठा लिए हुए हैं। वह अपनी व्यथा का वर्णन कमलपत्र पर लिखकर प्रियतम के पास भेजना चाहती है किन्तु भावातिरेक के कारण उसके हाथ कांपने लगते हैं और विवशता का अनुभव करती है -

"वधु लखुं शुं रे विट्ठला, मुआ हाथ न करे काम।"[१]

यहां `मुआ` शब्द के प्रयोग से भावाभिव्यंजना में उत्कृष्टता आ गई है।

`गोविन्द गमन` हमारी दृष्टि में `भ्रमर गीता` काव्य की एक आधारभूत रचना है। प्रिय विरह से संतृप्त भग्नहृदया गोपांगनाओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण इस काव्य में हुआ है। भ्रमरगीत प्रसंग विरह-विधुरा गोपियों की मनोदशा की अभिव्यक्ति का प्रधान केन्द्र रहा है। गोपियों की इसी मनोदशा के चित्रण का श्रीगणेश `गोविन्द गमन` में मिलता है।

भीम :

गुजराती के मध्यकालीन कृष्ण-भक्ति साहित्य में `हरिलीलाषोडशकला` रचना द्वारा कवि भीम अपना नाम अमर कर गये हैं। उनका आविर्भाव काल विश्वस्त प्रमाणों के अभाव में अद्यावधि विवादास्पद रहा है। प्रो० अनन्तराम रावल भीम का

१- बृहत् काव्य दोहन : इच्छाराम सूर्यराम देसाई

गोविन्द गमन - पद-१८, पृष्ठ-३३

भालण के शिष्य होने की संभावना का समर्थन करते हैं -[1] जबकि श्री के.का.शास्त्री ने भीम की भालण के शिष्य होने की संभावना का खण्डन करते हुए कहा है - "बाणभट्ट की कादम्बरी के गुजराती अनुवाद के पूर्व संस्कृत ग्रन्थ रत्नों का पद्यानुवाद प्रस्तुत करनेवाले भीम संवत् १५४१ और सं० १५४६ तक सिद्धपुर एवं प्रभास पाटण में जीवित थे ऐसा उनके `हरिलीला षोडश कला` और `प्रबोध प्रकाश` जैसे उपलब्ध काव्य ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है।[2] भीम एक भक्त हृदय कवि थे। वे अपना अधिकांश समय तीर्थयात्रा में व्यतीत करते थे। उन्होंने अपनी द्वारिका यात्रा का वर्णन `हरिलीला षोडश कला` में किया है।[3] अपने आराध्य के प्रति उनके हृदय में असाधारण प्रेम था।

पंडित बोपदेव ने भागवत का सारांश `हरिलीला विवेक` नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है जिसमें कुल १७८ श्लोक हैं। इस `हरिलीला विवेक` की रूपरेखा ग्रहण कर भीम ने `हरिलीला षोडश कला` नामक दो सहस्र पंक्तियुक्त काव्य का प्रणयन किया है, जिसके सोलह विभागों में कृष्ण-कथा का कलात्मक अंकन हुआ है। `हरिलीलाषोडश कला` `हरिलीला विवेक` का शब्दानुवाद नहीं है तथापि कवि ने पं० बोपदेव के प्रति अपने ऋण को स्वीकार करते हुए अपने सरल, सहज और स्निग्ध हृदय का परिचय देते हुए कहा है कि मैंने सरोवर का आधार ग्रहण कर कुएं की रचना की है।[4] ये शब्द कवि की विनम्रता के परिचायक हैं। यथार्थ में कवि भीम ने

१- "संभवत: भालण नो शिष्य अने ब्राह्मण मनातो कर्ता ब्राह्मणेतर होवानी शंका जन्मावतो सिद्धपुर निवासी पण द्वारका यात्रा ने रसियो भीम पण तेनी `हरिलीला षोडशकला` अने `प्रबोध प्रकाश`ए बे कृतियो थी पंदरमा शतक वैष्णव भक्ति साहित्य ने पुष्ट करी गयो छे."
- गुजराती साहित्य (भाग पहेलो) अनंतराय रावल-पृ० १०८-१९५४ ई०

२- कवि चरित्र : के.का.शास्त्री (द्वि.संस्करण) पृ० ८५

३- "सत संगति सेवूं द्वारिका, जेह मनीजई भवतारिका
गाऊं गोव्यन्द नां निज गीत, चतुर्भुज -परणि विलगूं चित्त ।।७४ ।।

४- पंडित बोपदेव द्विज एक, कीधुं हरिलीला विवेक ।
तिणि आधरि मि करी कथा, सरोवर जमलु कूउ यथा ।। १ ।।

'हरिलीला विवेक' रूपी स्वच्छ, निर्मल सरोवर में से भावों की सरस सुन्दर स्रोतस्विनी प्रवाहित की है। भीम ने इस काव्य का प्रणयन चुपई(चौपाई) और पूर्वकाया(दोहा) छंदों में किया है। भाषा में कहीं-कहीं पुरानी राजस्थानी का प्रभाव दृष्टिगत होता है। प्रस्तुत काव्य की विद्वता का परिचायक है। भागवत पुराण का उसका अध्ययन विशिष्ट रहा होगा। ऐसा इस कृति के आधार पर सहज ही कहा जा सकता है। श्री के.का.शास्त्री ने मध्यकालीन भक्ति काव्य में उनका स्थान निर्धारित करते हुए कहा है "आदि भक्ति युग के चमकते सितारों में निश्चय ही वे अपना स्थान बना लेते हैं।[१]

'हरिलीला षोडश कला' की १३वीं कला में ६ से २३ कड़ियों तक भ्रमरगीत प्रसंग का वर्णन मिलता है। १६ कड़ियों में आयन्त संक्षेप में किन्तु मार्मिक ढंग से प्रस्तुत प्रसंग का ~~प्रसंग~~ वर्णन किया है। कृष्ण द्वारा उद्धव को गोकुल भेजने का वर्णन इस प्रकार है -

"कृष्ण कहे उद्धव प्रति, वेगे गोकुल जाय।
कहो संदेशा अमतणा, नंद यशोदा माय ।।६ ।।

नगर की नारियों के प्रति श्रीकृष्ण के आकर्षण के उल्लेख द्वारा गोपियों ने नारी सहज असूया भाव की अभिव्यक्ति के साथ मार्मिक व्यंग्य किया है। कवि ने भ्रमरगीत प्रसंग की समाप्ति करते हुए 'भ्रमरगीता' शब्द का जो प्रयोग किया है वह विशेष ध्यान देने योग्य है क्योंकि इस शब्द का प्रयोग प्रथम बार इसी कवि ने किया है।

"एणी पेरे भ्रमरगीता सुणी, उत्तम तेहनी वाणी घणी।

जिस प्रकार कवि की यह कृति भागवत का सारांश है, उसी प्रकार भ्रमरगीत प्रसंग भी यहां एक प्रकार से सारांश रूप में वर्णित है। तथापि, भ्रमरगीत काव्य की अधिकांश विशेषताओं का निरूपण हुआ है। संपूर्ण कृष्ण लीलाओं के संक्षिप्त गान में कवि की अपनी सीमाएं होती हैं, इसीलिए प्रस्तुत प्रसंग का विशेष विस्तार नहीं हो सका है।

१- कवि चरित्र : के.का.शास्त्री (द्वि. संस्करण) पृष्ठ १०३

भालण :

नरसिंह के पश्चात् मध्यकालीन गुजराती साहित्य की भक्ति कविता में सर्वाधिक उल्लेखनीय कवि भालण हैं। उनका मूल नाम भट्टायण था किन्तु भालण पुरुषोत्तम के नाम से ही वे अधिक प्रसिद्ध हैं।[1] आख्यान काव्य के स्वरूप निर्माण का श्रेय उन्हीं को है। श्री के.का.शास्त्री ने उनका आख्यान साहित्य का जनक कहा है।[2] उन्होंने संस्कृत के रामायण, महाभारत जैसे प्रचलित ग्रंथों एवं विभिन्न पुराणों के आधार पर मूल कृति के कथा सूत्रों का निर्वाह करते हुए लोकोपयोग्य भाषा में अनुवाद प्रस्तुत कर गुजराती मध्यकालीन कविता के विकास में अपूर्व योगदान दिया है। रामायण के आधार पर 'राम-विवाह', महाभारत के आधार पर 'नलाख्यान' और 'दुर्वासाख्यान', मार्कण्डेय पुराण के आधार पर 'सप्तशती' और भागवत के आधार पर 'दशमस्कंध' जैसे आख्यानों की रचना द्वारा आख्यान साहित्य की प्राण-प्रतिष्ठा की। भालण ने बाणभट्ट कृत, गद्यमय 'कादम्बरी' का ऐसा सुन्दर मौलिक पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है कि उन्हें नवकादम्बरीकार की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। मध्यकालीन गुजराती भाषा के स्वरूप को समझने के लिए भालणकृत कादम्बरी एक अद्वितीय ग्रंथ सिद्ध होता है।

भालण उत्तर गुजरात के पाटण शहर के निवासी थे। वे संस्कृत भाषा के अच्छे पंडित थे। उनका प्रमुख व्यवसाय पुराणकथा के द्वारा समाज का संस्कारोद्बोधन करना था। धार्मिक एवं सांसारिक उभय विषयों का चित्रण उनकी कविता में समान रूप से मिलता है। उन्होंने राम भक्त होने पर भी भागवत के दशम स्कंध का सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया है। यद्यपि यह अनुवाद शब्दश: नहीं है तथापि मूल रचना के वर्णन सौन्दर्य एवं कथा-सूत्रों का अच्छा निर्वाह हुआ है।

भालण रचित 'दशम स्कंध' के ३३ पदों में भ्रमरगीत प्रसंग का वर्णन मिलता है।[3] नन्द एवं यशोदा के पुत्र-प्रेम के वर्णन द्वारा कवि ने वात्सल्य रस का अगाध

१- गुजराती साहित्यनी विकास रेखा : विजयराय क.वैद्य पृष्ठ ५१ (१९६५ ई०)

२- "भालण ने आपणे आख्यानो नो पिता कहिये तो एमां जराये खोटुं नथी"
कवि चरित्र : के.का.शास्त्री (द्वि.संस्करण) पृष्ठ १६२

३- भालण कृत दशम स्कंध -पद नं० २७० से २९२, सं० ह.द.कांटावाला पृ० २९३

स्रोत बहाया है । यशोदा के मातृ-हृदय का कवि ने जो दर्शन कराया है वह सहज एवं स्वाभाविक होने के कारण अत्यंत हृदयस्पर्शी बन पड़ा है । आंखों में काजल और भाल पर तिलक लगाते समय बाल-कृष्ण बीच में ही भाग खड़े होते हैं इसका कवि ने बड़ा मार्मिक चित्रण किया है जिसमें बाल स्वभाव की चंचलता दर्शनीय है :-

"आंख आंजती ने तिलक करती, वालो अधवच जातो नासी रे,
ने सुख तो तमो नथी देखवुं, जो करवत मूको काशी रे ।।"

गोपियों के अनन्य एवं एकनिष्ठ प्रेम की उपालंभ पूर्ण अभिव्यक्ति के चित्र अत्यंत मार्मिक बन पड़े हैं । उनका प्रेम जन्म जन्मान्तर का है -

"सुखे मथुरा मां रहो, अमो विरहे तमारे मरशुं रे,
बीजे भव वृन्दावन माहे, तम पासे अवतरशुं रे ।।"

विरहिणी गोपियों ने विभिन्न उपालंभों द्वारा अपने विरही हृदय की व्यथा और व्याकुलता की जो असूयापूर्ण अभिव्यक्ति की है वह भावक के हृदय को निश्चय ही द्रवीभूत कर देती है । नागरी नारियों के आकर्षण की बात कह कर गोपियों ने अपने प्रियतम के प्रति व्यंग्य किया है :-

"आहीरडां अमो क्यम गमुं (जो) मली नगर नी नारी जी ।
कामी नर कोनो न होये तमे जुओ मन विचारी ।।"

गोपियों के हृदय का रोष 'धूर्त' शब्द के प्रयोग में द्रष्टव्य है । कृष्ण के दासी कुब्जा के प्रति आकर्षण को लेकर श्यामवर्ण के सभी धूर्त होते हैं ऐसी धारणा अब उनके मन में दृढ़ होती जा रही है ।

"हजी शुं परण्या नथी वणी वधारी लाज जी,
बंध न मां शाने पड़े जो दासीए सरे काज ।"

\+ \+ \+

"काला सघला धूतारा कोणे कल्या नव जाग जी ।"

इस पर भी श्रीकृष्ण का स्थान उनके हृदय में बना हुआ है । उनकी मुरली का माधुर्य वे नहीं भूल सकतीं । उनकी इस विवशता का चित्रण भालण ने अत्यंत

कलात्मक ढंग से किया है -

" ते मन पाछुं क्यम वले जेणे मुरली नो रस चाख्यो जी ।
ते वालो क्यम विसरे, जे हैडे छ चांपी राख्यो जी ।।"

जब उद्धव जी अपनी ज्ञान और योगयुक्त परब्रह्म की बातें गोपियों की इच्छा के विरुद्ध सुनाने लगते हैं तब वे उनकी बातों को रस विहीन कहकर ज्ञान कथा बंद करने के लिए साफ शब्दों में कह देती हैं :-

"ज्ञान कथा रहेवा दो ते अमने फीकी लागे जी ।"

इस पर भालण के उद्धव दुराग्रह पूर्वक गोपियों को समझाने का प्रयत्न करते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण को मानव समझना भ्रांतिपूर्ण है । वे साक्षात् पूर्ण ब्रह्म हैं । असुर वंश के नाश के लिए उन्होंने जन्म धारण किया है । यहां पर ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण के अवतार धारण करने के उद्देश्य में गीता के अमर संदेश 'यदा यदा हि धर्मस्य' और "परित्राणाय साधुनां" का प्रभाव द्रष्टव्य है ।

भ्रमरगीत प्रसंग के अंत में अपने प्रियतम के प्रति गोपियों की जो आर्त पुकार है, उसे पढ़कर पत्थर हृदय भी द्रवित हो सकता है । गहन निराशापूर्ण जीवन में वे मात्र सूक्ष्म आशा के सूत्र के सहारे जीवित हैं :-

"आशा अंबर ने तांतणे मारा बणाया जी प्राण ।
नथी जाता जी निसरी, तमारा चरण नी आण ।।"

प्रियतम के अभाव में उनके प्राण संकट में हैं । वे उद्धव जी के साथ ये संदेश भेजती हैं कि यदि हमारी मृत्यु के समाचार सुनने उन्हें प्रिय हों तो वे मथुरा में रहें :-

"गोपी नी विनती रे, उद्धव माधव ने कहे जो ।
प्राण अमारा गया गमे तो, मधुसूदन मथुरा मां रहेजो ।।"

काव्य के अंत में व्रजांगनाओं और उनकी अवर्णनीय [illegible] प्रेमाभक्ति की प्रशंसा की गई है -

"प्रेम शुं कहुं ब्रजनारी नो कह्यो न जाय वाणी जी ।
प्रेम भक्ति तो कही ना जाये जिह्वा एक मुखमांयजी ।।"

भालण के इस भ्रमरगीत प्रसंग के वर्णन के अंतर्गत 'सूरदास' छाप के दो पद मिलते हैं।[1] 'सूरदास' नाम के प्रयोग के पीछे कवि का क्या आशय रहा होगा यह एक विचारणीय प्रश्न है। क्या कवि हिन्दी के अष्टछाप के कवि सूरदास के प्रति अपना ऋण या भक्ति भाव प्रकट करना चाहते हैं ? सूरदास नामक अन्य कवि के होने की संभावना भी हो सकती है। अत: इस सम्बन्ध में अन्तिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। भालण के सम्बंध में एक अन्य बात भी उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने 'दशम स्कंध' में ब्रजभाषा में लिखित छ: पद भी दिये हैं।[2] ९९. कृष्ण के व्रज प्रेम का सुन्दर वर्णन कवि ने ब्रजभाषा में किया है -

"ब्रज को सुख समरत श्याम ।
बनकुटी सो बीसरत नाहीं, नाही न भावत सुन्दर धाम ।
बदीर मात्र नवनीत के कारन उखले धाम बांधते बहु दाम,
चित्त में वे जु चुभी रही हैं, चोर चोर कहत हे नाम ।
निशदिन फिर तो जु सुरभि के संगे, भरवर परत शीत घन घाम ;
निश दोहन बंधन को सुख, कही बेठत नाही जो नाम ।।
मोर पिच्छ गुंजाफल ले ले, बेख बनावत रुचिर ललाय ;
भालन प्रभु विधाता की गति, चरित्र तुमारे हे सब बाम ।।

नाकर : (सं० १५५० से १६३०) :-

आख्यान साहित्य का जो बीज वपन भालण ने किया उसको सींचने का श्रेय नाकर को है। कृतु आख्य दोहन के आठवें ग्रंथ में अंबालाल जानी ने इस कवि के सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए लिखा है -"महाकवि प्रेमानंद की मातृभूमि वीरक्षेत्र(बड़ौदा)

१- भालणकृत दशम स्कंध, पद नं० २८७,२८८

२- वही, पद नं० ७७,२५१,२५३ से २५५ और २६५.

जो एक समय कवियों का केन्द्र स्थान था, उसी नगर में वैश्य कवि नाकर का जन्म हुआ था ।[१] कवि नाकर के अध्येता डा० चिमनलाल, त्रिवेदी के अनुसार भी नाकर बड़ौदा के निवासी थे और वणिक जाति के थे । उनके पिता का नाम विलो था । उनका जीवनकाल सं० १५५० से १६३० तक माना गया है ।[२५२]

कवि नाकर ने मुख्यतया रामायण, महाभारत, और भागवत के आधार पर विभिन्न आख्यानों की रचना की है । लवकुशाख्यान, मेरध्वजाख्यान, चन्द्रहासाख्यान, सुधन्वाख्यान, कर्णाख्यान, ध्रुवाख्यान, शिव विवाह, अभिमन्यु आख्यान, ओखाहरण, नलाख्यान, सोगठ्य नो गरबो, कृष्णविष्टि और भ्रमरगीता आदि उनकी उल्लेखनीय रचनाएं हैं । उनकी प्रत्येक कृति में उनकी वैष्णव परायणता का परिचय मिलता है । उनके हृदय में भक्ति-भाव निरन्तर तरंगायित होते रहते थे । उनका यह भक्त हृदय ही एक प्रकार से इन कृतियों में प्रतिबिम्बित हुआ है ।

कवि नाकर मात्र परोपकार वृत्ति से काव्य रचना की ओर उन्मुख हुए थे । स्वरचित आख्यान काव्य ये बड़ौदा के मदनसुत नामक विप्र को जीविकोपार्जन हेतु समर्पित कर देते थे । ब्राह्मणों द्वारा अपने आख्यानों का गान सुनकर वे अपने आपको कृतकृत्य समझते थे । निश्चय ही वे साधन सम्पन्न रहे होंगे क्योंकि अपनी रचनाओं द्वारा अर्थोपार्जन करने की वणिक-वृत्ति के दर्शन उनमें नहीं होते :-

'ग्रंथ लखी ब्राह्मण न अर्पो रे, शिव बिवा मोरे मन तर्प्यो रे ।
ग्रंथ लखी कृष्णार्पण कीधो रे, 'शिव विवा' गातां सहु अर्थ सिध्यो रे ।।[३]

उपर्युक्त अन्तसाक्ष्य के आधार पर स्पष्ट होता है कि वे मात्र भक्ति-भाव से ही काव्य सृजन करते थे और निःस्पृह भाव से अपनी कृतियां ब्राह्मण कथावाचक को

१- बृहत् काव्य दोहन ग्रंथ ८, सं० इच्छाराम सूर्यराम देसाई पृ० ३०
२५- कवि नाकर : एक अध्ययन - डा० चिमनलाल त्रिवेदी -पृष्ठ-५
३- शिव विवाह प्र.का.माला पृष्ठ १२६

दे देते थे । इस पर से उनके उदात्त स्वभाव और विनीत व्यक्तित्व का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है ।

नाकर कृत 'भ्रमरगीता' की हस्तलिखित प्रति बड़ौदा के प्राच्य विद्यामंदिर के संग्रह नं० ६०० में उपलब्ध है । गुजराती हस्तलिखित प्रतियों की संकलित सूची में 'कृष्ण विष्टि' के साथ 'भ्रमरगीता' का नाकर की कृति के रूप में उल्लेख हुआ है । प्रस्तुत संकलित सूची के अनुसार उसका प्रणयन काल सं० १६०५ है ।[१]

नाकर ने अपनी भ्रमरगीता में वस्तु संकलन और कथा प्रसंग के विकास में अपनी गहन सूझ-बूझ द्वारा मौलिकता का अच्छा परिचय दिया है । गोधूलि के समय उद्धव का गोकुलागमन, नंद एवं उद्धव का वार्तालाप, कृष्ण की लीलाओं का नंद द्वारा वर्णन, हर्ष विभोर यशोदा के वक्षस्थल से पयधारा का निर्झरित होना, उद्धव के रथ दर्शन द्वारा गोपी हृदय में अक्रूर के पुनरागमन का आभास आदि अधिकांश वर्णनों में भागवत का प्रतिबिम्ब यथावत् मिलता है । कृष्ण-विहीन गोकुल के वर्णन में कारुण्य, गोपियों के संस्मरण वर्णन में भाव-माधुरी और भ्रमर के प्रति उपालंभों में वाक् चातुर्य के दर्शन होते हैं । आख्यान विधा के विकास में इस रचना द्वारा कवि नाकर उल्लेखनीय योगदान दे सके हैं । 'कड़वा बद्ध' शैली में लिखित नाकर कृत भ्रमरगीता गीतिकाव्य के लक्षणों से युक्त वह काव्य रचना है जिसका प्रत्येक पद भाव प्रधान है ।

नंद के पितृ-हृदय और यशोदा के मातृ हृदय की अभिव्यक्ति में वात्सल्य का अक्षय स्रोत मिलता है । दोनों का कृष्ण के प्रति प्रेम निर्मल रूप में बहा है । माता यशोदा को ऊखल के साथ अपने प्यारे पुत्र को बांधने का प्रसंग सहज ही याद आता है । उसकी लीलाओं के स्मरण मात्र से उनके हृदय में भावों का अजस्र स्रोत प्रवाहित हो उठता है । उसके पराक्रमों का वर्णन करते हुए वे नहीं अघातीं । पुत्र के वियोग में उनके लिए जीवित रहना मुश्किल है :-

---

१- गुजराती हाथ प्रतोनी संकलित यादी- सं० केशवराम काशीराम शास्त्री पृष्ठ-९३-९४

"माहरा हाथ मां ह्यु हीरायु रे ते लीधु उछाली ।
उछाली लीधु देखता नि कही न चालू प्राण ।।"

कृष्ण विहीना गोकुल की करुण दशा का चित्रण विविध अलंकारों की सहायता से किया गया है । अलंकारों के मार्मिक प्रयोग में उच्च काव्यत्व के दर्शन होते हैं । कृष्ण की अनुपस्थिति में गोकुल सूर्यरहित दिन के समान धुंधला लगता है । वह एक प्रकार से अमावस्या की रात्रि के समान हो गया है । वह उस पेड़ के समान है जिस पर से पत्ते झड़ गये हों :-

"गोकुल रहवुं शोभीये रे दिवा न डग्युं भाण,
निशा केवी शोभीभि, आवी तिथि अमास,
कृष्ण केहवु शोभिभि खिरी गया लेहना पात्र ।।"

गोपियों के श्रीकृष्ण -संस्मरण-वर्णन में भाव-माधुरी और भ्रमरगीत के प्रति उपालंभों में वाक् चातुर्य के दर्शन होते हैं । भ्रमर-प्रवेश के पश्चात् के उपालंभ भी अत्यन्त मार्मिक बन पड़े हैं । एक गोपी भ्रमर को दुर्जन कहकर अपने चरणों का स्पर्श न करने के लिए कहती है -

"जा जा रे जा अलीमऊ तू तो,
अलगू स्पर्शी म करीश चर्णि,
जा जा रे जा तू दुर्जन ---------- ।"

इस प्रकार कवि नाकर ने अपने काव्य में नंद,यशोदा एवं गोपियों के हृदय मंदिर में कृष्ण के ~~[illegible]~~ प्रति कैसे भाव हैं उनका सजीव चित्रण आकर्षक एवं सार्थक संवादों द्वारा किया है । मार्मिक भावों के विस्तार में कवि ने प्रशंसनीय योगदान किया है । यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस कृति की पूर्ण हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं होती । भ्रमर को संबोधित कर कहे गये व्यंग्य वचनों के बाद के पद नहीं मिलते । संभव है नाकर ने सम्पूर्ण भ्रमरगीता की रचना की होगी, किन्तु लिपि-कार ने किसी कारणवश उसे अपूर्ण ही छोड़ दिया हो । जिस भव्यता के साथ नाकर ने भ्रमरगीत का आरम्भ किया है उसे देखते हुए, उन्होंने इस काव्य की रचना

नहीं की होगी ऐसा विश्वास नहीं होता । कुछ भी हो दूसरी प्रामाणिक प्रतिलिपि के अभाव में इस समय यह काव्य अपूर्ण ही कहा जायेगा । गीत काव्य का यह एक सुन्दर उदाहरण है ।

चतुर्भुज :

'फागु' पद्धति के काव्य प्राचीन जैन साहित्य में उपलब्ध हैं । जैनेतर कवियों ने भी 'वसन्त विलास' जैसे 'फागु' पद्धति के काव्यों का प्रणयन किया है । इस विधा के अन्तर्गत जैनेतर कवि चतुर्भुज ने भी अपनी 'भ्रमरगीता' द्वारा एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है । इस 'भ्रमरगीता' का सर्व प्रथम प्रकाशन सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० भोगीलाल सांडेसरा ने 'गुजराती साप्ताहिक' के सं० १९८९ के दीपोत्सवी अंक में किया था । उन्होंने ही 'प्राचीन फागु संग्रह' में इसे पुन: प्रकाशित किया है । प्रस्तुत 'भ्रमरगीता' फागु काव्य है इसमें कोई संदेश नहीं । कवि ने स्वयं काव्यारंभ में सरस्वती की वंदना करते हुए कहा है :-

'भारथी प्रारथी पाए लागुं, सारदा सर्वत्र सुमति मागुं,
फाग फागुणि गाऊं कृष्ण केरा, फल जाके फोकट टलई फेरा ।।'

कवि ने प्रारंभ में अक्रूर के साथ कृष्ण के मथुरागमन के समय दु:खी गोपियों द्वारा किये गये अनुनय विनय का भावबाही वर्णन किया है । शोक-संतप्ता गोपियों ने अपने प्राणवल्लभ को ले जाने वाले अक्रूर को भावावेश में आकर 'क्रूर' और 'पापी' तक कह डाला है - 'विरह विधुरा गोपियों को सान्त्वना प्रदान करने के लिए उद्धव को गोकुल भेजने का वर्णन मिलता है । उद्धव जी गोकुल में आकर नंद यशोदा के हृदय को शान्ति प्रदान करते हैं । इसके पश्चात् उद्धव एवं गोपांगनाओं के बीच संवाद का प्रारंभ होता है । कृष्ण की लीलाओं का स्मरण करती हुई गोपियां भाव विह्वल हो उठती हैं । नगर की 'नवरस नारियों' के प्रति मोहन मोहित हो गये होंगे, आदि विचारों द्वारा कृष्ण की चंचल मनोवृत्ति के प्रति गोपियों ने व्यंग्य किया है -

"हरि हवे शुं करि आंहा आवि,नीरस नारी आहो थई अभावी,
भ्रमर नी पिरि भला भाव जोई,नवरस नगर नी नारि मोही ।।"

चन्द्रावली जैसी गोपांगनाओं को उद्धव वेदान्त और भोगकी बातों द्वारा सान्त्वना प्रदान करने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं । गोपांगनाएं स्पष्ट शब्दों में उनकी ज्ञान कथा का विरोध करती हैं । उनका तो कृष्ण के साकार लीला विहारी रूप में ही विश्वास है -

"ज्ञान कहिऊं तह्मे ते न लहीई, जांणिई हरि-गलि लागी रहीई ।"

तदनन्तर कवि ने भ्रमरागमन का वर्णन अत्यन्त संक्षेप में किया है । गोपियों ने बहु प्रचलित "धूर्त" शब्द द्वारा भ्रमर के प्रति तिरस्कार व्यक्त किया है -

"रीझवई कई गुण ग्यांन कयरी ए धूरत कृष्णनर्य बानी वयरी ।"

गोपियों के कतिपय उपालंभ वर्णन के पश्चात् उद्धव के दस-बीस दिन गोकुल में रहने का उल्लेख है । गोपियां निरन्तर कृष्ण की व्रज लीलाओं का स्मरण करती हैं और अन्त में उद्धव के साथ कृष्ण के प्रति संदेश भेजती हैं कि हमने क्या अपराध किया है जो आपने विदेश में रहना स्वीकार किया है -

"चतुर्भुज नाथानि चाहि रे, कहावि गोपी संदेश ;
शा अवगुण अह्ये कीधा रे, लीधा तमहें रे विदेश ।"

मात्र ९९ चरणों में कवि ने इस काव्य रचना का समाहार किया है । यद्यपि प्रसंग एवं भाव विस्तार के लिए पर्याप्त अवकाश था तथापि कवि ने अधिक विस्तार नहीं किया । इस काव्य की रचना करते समय कवि ने अपने अल्पायु होने का उल्लेख किया है -

"कहि चतुर्भुज कर जुगल जुगल जोड़ी बोलिऊ बालापण बुद्धि थोड़ी,
सामलई गाई जे नरनारी,सफल फेरा हुई तिहां संसारी ।"

"बालपण" शब्द के आधार पर उनके अल्पायु होने का अनुमान किया गया है । अधिकांश भ्रमर गीताओं में माहात्म्य वर्णन मिलता है । चतुर्भुज ने भी इस परम्परा

का निर्वाह करते हुए माहात्म्य वर्णन किया है। भ्रमरगीताओं के प्रणयन में धार्मिक भावना विशेष अनुप्राणित करने वाली रही होगी ऐसा अनुमान युक्ति युक्त प्रतीत होता है।

'भ्रमरगीता' के अतिरिक्त चतुर्भुज रचित अन्य कोई रचना अद्यावधि उपलब्ध नहीं होती। 'फार्बस सभा' बम्बई के संग्रहालय में 'एकादशी आख्यान' के रचयिता के रूप में किसी चतुर्भुज का नाम है। वह रचना इन्हीं चतुर्भुज की है या अन्य चतुर्भुज की इसका निर्णय करना कठिन है।

चतुर्भुज की अन्य रचनाओं के अभाव में उनका मूल्यांकन मात्र 'भ्रमरगीता' के आधार पर किया जाता है। निश्चय ही भ्रमरगीता उनकी कीर्ति का अक्षय स्रोत है। डा० सांडेसरा ने इस कवि की प्रशंसा करते हुए उचित ही कहा है - 'कवि चतुर्भुज अल्हड़ उदीयमान कवि के समान हैं। किन्तु उनकी भ्रमरगीता उच्चकोटि की रचना सिद्ध होती है। काव्य में आद्यन्त करुण रस की मार्मिक अभिव्यक्ति है। उनकी भाषा भी प्रभावपूर्ण और भावानुगामिनी है। कृष्ण के मथुरागमन के समय गोपियों की अनुनय विनय, उद्धव के समक्ष कृष्ण की बाल लीलाओं की स्मृतियों द्वारा व्यक्त गोपों का शोध, नंद एवं यशोदा का रुदन आदि प्रसंगों के चित्र कवि ने कुशल चित्रकार की भांति अंकित किये हैं।'[१]

मीरांबाई : (सं० १५५५ से १६०३) :

मध्यकालीन हिन्दी एवं गुजराती काव्य में श्रेष्ठ कवयित्री के रूप में मेवाड़ कोकिला मीरा की गणना समान रूप से होती है। मीरा के जीवन एवं काव्य के सम्बंध में हिन्दी एवं गुजराती में अद्यावधि पर्याप्त साहित्य प्रकाशित हुआ है। मीराबाई किसी सम्प्रदाय विशेष की अनुगामिनी रही हों ऐसे प्रमाण उपलब्ध नहीं होते। काव्य क्षेत्र में जिस समय मीरा का आविर्भाव हुआ उस समय चैतन्य महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा स्थापित भक्तिमार्ग की उभय शाखाओं ने कृष्ण भक्ति के रंग से सामाजिक

१- प्राचीन फागु संग्रह : सं० भोगीलाल सांडेसरा।

वातावरण को रंग दिया था । श्री के.एम.मुन्शी मीरां एवं नरसिंह पर वृन्दावनीय चैतन्य मार्गीय भक्ति का प्रभाव होने का समर्थन करते हैं ।[1] मीरा में सहज और स्वाभाविक विरक्ति एवं वैराग्य के दर्शन होते हैं । अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्तिभाव उनके पदों में आद्यन्त परिलक्षित होता है । उनके हृदय मंदिर में श्रीकृष्ण की पूर्ण वैभवभरी मूर्ति समाहित है । उनके पदों में न तो शुद्ध रूप में चैतन्य का प्रभाव है और न पूर्णतया पुष्टिमार्गीय प्रभाव ही । उनकी रचनाओं में स्वत: प्रस्फुटित भक्ति का सहज स्निग्ध स्रोत प्रवाहित होता रहा है । अत: किसी सम्प्रदाय विशेष के साथ प्रेम-दीवानी मीरा का सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता । श्री के.का. शास्त्री ने भी उन्हें सम्प्रदायों से भिन्न माना है ।[2] मीराबाई सं० १५८८ के लगभग द्वारिका गईं और अपना शेष जीवन वहीं बिताया । गुजरात में रहने के कारण रणछोड़दास को सम्बोधित कर लिखे गये पद भी मिलते हैं -

"मेरो मन हर लीनो राजा रणछोड़, प्यारा रंगीला रणछोड़ ।"

मीरा के आविर्भाव के समय पद साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जाने लगा था । १५वीं शताब्दी में मैथिल कोकिल विद्यापति मैथिली भाषा में राधा-कृष्ण विषयक पदों की रस धारा प्रवाहित कर चुके थे । मीरा के समकालीन सूरदास, नंददास, कुंभनदास, परमानंददास, और कृष्णदास आदि अष्टछाप के कवियों के पद साहित्य द्वारा व्रज प्रदेश भक्ति के वातावरण से गूंज उठा था । प्रेम दीवानी मीरा ने पद शैली में काव्य रचना की है ।

कृष्ण-भक्ति में तन्मय कवयित्री मीरा ने गिरधर नागर के सम्मुख कीर्तन करते समय अपने विविध भावों को शब्दाकार दिया है । उनके पदों में शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है । कृष्ण के मथुरागमन के कारण उद्भूत गोपी बिरह के पद भी उनके काव्य में परिलक्षित होते हैं । व्रज

१- गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर : के.एम.मुन्शी, पेज-१३३

२- चैतन्य नी असर एमां नथी के नथी पुष्टिमार्ग नी ए पोताना स्वतंत्र राह ऊपर चाली जाय छे ।" कवि चरित्र : के.का.शास्त्री (द्वि.संस्करण) पृष्ठ-१६४

की एक गोपी की सी तन्मयता इन पदों में मिलती है। मध्यकालीन 'भ्रमरगीत काव्य परम्परा के अन्तर्गत मीरा के इन स्फुट पदों का महत्व अक्षुण्ण है। भ्रमरगीत काव्य की प्रमुख विशेषताएं - उपालंभ,असूया आदि भाव मीरा के निम्नलिखित पदों में द्रष्टव्य हैं -[१]

"कठण थया माधव मथुरा जई कागल न लख्यो कटको
अहियां थकी हरि हवड़ां पधार्या ओधव साथे अटक्योरे
अंगे सुवरण वाघा पेहेर्या सिर पीताम्बर पटको रे
मथुरा मां एक रास रच्यो ते, कहान कृष्ण संग अटक्यो रे
----- कठण ।
काली शी कुब्जा,अंगे के कूबड़ी ए शुं करी जाणे लटको रे ?
कान जी के काजो ने एम के कूबड़ी रंगे रंग बन्यो लटको ।"

श्रीकृष्ण की निर्ममता, निर्दयता को लेकर कवयित्री ने व्यंग्य किया है। श्रीकृष्ण और कुब्जा के संग को लेकर भी मार्मिक व्यंग्य किया गया है। कुब्जा के प्रति आकर्षण को लेकर ही कृष्ण व्रज में वापस नहीं आये। बहुत जल्दी आने का वचन दे गये थे फिर भी नहीं आये -

"ब्रज मां नाव्या फरी ने गोपी नो व्हालो
ब्रज मां नाव्या फरी ने ----- गोपी नो
गाम गोकुलियुं मेहेली ,मथुरा पधार्या व्हालो ;
जई वर्या कुब्जा काली ने ------- गोपीनो
सात दिवस नो हरि, वायदो करी गया ता ;
खटमास थया के हरि ने -------- गोपीनो
मीरा के प्रभु गिरधर ना गुण व्हाला ;
चरण कमल चित्त हरी ने ----- गोपीनो ।"

१- मीरांबाई : एक मनन : डा० मंजुलाल र.मजमुदार
प्रथमावृत्ति, गुजराती पदो -पृष्ठ -२३७

उद्धव जी पत्र लेकर आए हैं किन्तु राधा और गोपियां पत्र नहीं पातीं। उनकी आंखों में आंसू भर आये हैं। विरहाग्नि निरन्तर बढ़ती जा रही है -

"कागद ले राधा बांचन बैठी भर आई छाती -
बैठा-निरज में अंब बहे रे, गंगा बहि जाती -
पाना ज्यूं पीली पड़ी रे, धान नहीं खाती -
हरि बिन जीवड़ो यूं जलै रे, ज्यूं दीपक संग बाती।"[१]

कवि मीरा के इन पदों में गोपी कृ०कृ के हृदय की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं।

केशवराम कायस्थ : (सं० १५९२ तक जीवित) :

कवि केशवराम सौराष्ट्र स्थित प्रभास पाटण के निवासी थे। फार्बस, गुजराती सभा द्वारा प्रकाशित 'श्रीकृष्ण क्रीड़ा काव्य' उनकी प्रामाणिक रचना है। प्रस्तुत कृति का संपादन श्री अम्बालाल जानी ने किया है। श्री अम्बालाल जानी के मतानुसार कवि ने मात्र भागवत पर अवलम्बित न रहकर विष्णु, हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों एवं गर्ग संहिता में प्राप्त कृष्ण चरित्र एवं अनेक लोक कथाओं से प्रेरणा ग्रहण कर अनूठा चित्र उपस्थित किया है। कवि ने अपने समय के रीति-रिवाजों, मंदिरों की पूजाविधि आदि का प्रतिबिम्ब ग्रहण कर अपने काव्य में यथास्थान तद्युगीन जीवन का चित्र उपस्थित किया है। भागवत में राधा का उल्लेख नहीं मिलता किन्तु प्रस्तुत काव्य में कृष्ण के साथ राधा का भी समावेश हुआ है।[२]

१- मीराबाई एक मनन : व्रज-वृन्दावन विहारी नां पदो-पृष्ठ-२०९

२- "प्रस्तुत काव्य केवल श्रीमद् भागवत ना छ दशम स्कंध नुं भाषान्तर नथी पण सारोद्धार वाली स्वतंत्र रसीली कृति छे. कविए एमां भागवत्ना दशम उपरान्त नां अन्य स्कंधों, विष्णु-पुराण, हरिवंश, कृष्णजन्मखण्ड, गर्ग संहिता आदि पुराणमां अंकित तेमज ते उपरान्त लोक प्रचलित श्रीकृष्ण क्रीडा नी घणी एक कथाओ मेलवी छे."

श्रीकृष्ण लीला काव्य : अम्बालाल बु. जानी, १९३३ ई० निवेदन पृ०११

`कृष्ण क्रीड़ा` काव्य का प्रणयन काल सं० १५९२ है। अन्तसाक्ष्य के आधार पर श्री के.का.शास्त्री जी ने उक्त समय का अनुमान किया है।[1] अद्यावधि कवि की मात्र यही एक रचना उपलब्ध होती है। इस काव्य में गुजराती के अतिरिक्त बीच-बीच में संस्कृत एवं ब्रज की रचनाओं का प्रयोग मिलता है। जिससे कवि के विस्तृत अध्ययन का परिचय मिलता है। ब्रजभाषा में प्रयुक्त पदों को देखकर स्व० रा.चू. मोदी जैसे आलोचक उन पर पुष्टिमार्गीय अष्टसखाओं के काव्य का प्रभाव होने का अनुमान करते हैं। जबकि श्री के० का० शास्त्री जी ने उन्हें श्रीधर से प्रभावित सामान्य भक्तिमार्ग का अनुयायी कहा है। उन्होंने केशवराम की इस रचना को भालण एवं प्रेमानंद के दशमस्कंध से भी श्रेष्ठ कहा है।[2] संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पंडित होने पर भी कवि केशवराम ने पाण्डित्य प्रदर्शन का आग्रह नहीं रखा। शब्दाडंबर का मोह छोड़कर उन्होंने जन सुलभ भाषा में काव्य का प्रणयन कर उसे लोकोपभोग्य बनाया है।[3] अपनी स्वाभाविकता के कारण प्रस्तुत कृति का भ्रमरगीत प्रसंग पाठक के हृदय पर प्रभावोत्पादक सिद्ध होता है।

`कृष्ण क्रीड़ा काव्य` के सोलहवें सर्ग में कवि ने अक्रूर के साथ कृष्ण के मथुरागमन को लेकर गोपियों के वियोगजन्य विलाप का हृदय-विदारक वर्णन किया है। गोपियों ने इस अप्रत्याशित वियोग के कारण अक्रूर को क्रूर कहा है।[4]

१- कवि केशवदासे मात्र भागवत नहि पण विष्णु पुराण, हरिवंश, कृष्णजन्मखण्ड, गर्ग संहिता, ब्रह्मवैवर्त, गीत गोविन्द वगेरे ग्रंथों नो सारी रीते आश्रय लईने कृष्ण क्रीड़ा काव्य रच्यु छे. भागवत मा राधा साथे नो प्रसंग के राधानु नाम सुद्धा नथी मलता त्यारे केशवदासे राधाकृष्ण ना प्रसंग स्फुट रीते आप्यो छे।
कवि चरित्र : के.का.शास्त्री (द्वि.संस्करण) पृष्ठ २२९

२- `केशवदास नी आकृति भालण ना दशमस्कंध थी चडियाती छे ज, पण प्रेमानंद ना दशम स्कंध नो पण क्याक छठावे रेवी छे
कवि चरित्र : के.का.शास्त्री- पृष्ठ-२३८

३- `केशवदास नी भाषा शिष्ट, मीठी, प्रसादिक अने भक्तिरस थी छलकाती छे. ते क्लिष्ट नथी, पण सम्लिष्ट छे. ते सादी, सरल अने शुद्ध सुगम सारा संस्कृत शब्दोथी भरेली छे
श्रीकृष्ण क्रीड़ा काव्य सं० अम्बालाल बु.जानी, १९३३ ई० निवेदन पृष्ठ-७

४- `कृष्णक्रीड़ा काव्य` सर्ग १६ पद ४१ पृष्ठ १२३-सं० अम्बालाल बु.जानी

बीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर उद्धव का व्रजागमन, प्रात:काल में उनका रथ देखकर गोपियों के मन में अक्रूर के प्रति उपालंभ, भ्रमरगीत, कृष्णलीला के भावपूर्ण संस्मरण, कृष्ण के पुन: दर्शन की अभिलाषा और और गोपियों का संदेश लेकर उद्धव के मथुरा लौटने तक की कथा का सुन्दर निर्वाह मिलता है।

भ्रमर प्रवेश के पश्चात् गोपियों के उपालंभयुक्त विरह वर्णन में कवि की मौलिकता के दर्शन होते हैं। गोपियाँ भी श्रीकृष्णकी प्रतीक्षा में मथुरा के मार्ग पर खड़ी होती हैं। प्रियतम की याद से उनके हृदय में असह्य पीड़ा का अनुभव हो रहा है। कृष्ण को कुब्जा के मोहपाश में बंधे देखकर उन्हें निश्चय आश्चर्य होता है। प्रिय विरह के कारण उनके नयनों से निसृत आंसुओं की धारा की तुलना यमुना अनवरत प्रवाह के साथ की गई है :-[1]

"उह्वे उभां मथुरा वाटे रे, हरिनामे हूंडूं फाटे रे।
पेसी चन्दन चीरें चोह्यो रे, कुबजा ने कामणे मोह्यो रे ।।२५।।"

और

"जलधारा चली चाली रे न रहे जन यमुना भाली रे।"

गोपियां उद्धव से साफ-साफ कह देती हैं कि हमें ज्ञानोपदेश नहीं चाहिए। व्यंग्य में वे योग का उपदेश कुब्जा को करने के लिए कहती हैं। उन्हें तो अपने प्यारे प्रियतम कृष्ण चाहिए :-

"अम्ने अच्युत दाखवो, कहो कुब्जा ने योग।।३५ ।।

गोपियों ने कुब्जा, कृष्ण और उद्धव की त्रिपुटी को ठग कहकर मार्मिक व्यंग्य किया है।[2] अन्त में श्रीकृष्ण को भेजे गए संदेश और भेंट सामग्री वर्णन के साथ उक्त प्रसंग समाप्त होता है। कवि की सारग्राहिता निश्चय ही सराहनीय है।

१- 'कृष्ण क्रीडा काव्य' सर्ग २०- पद २५
२- वही, सर्ग २० पद ३५

ब्रेहेदेव : (सं० १६०९ तक विद्यमान)

ब्रेहेदेव का नाम कतिपय हस्तलिखित प्रतियों में ब्रिहिदे भी मिलता है। भ्रमरगीता उनकी प्रामाणिक रचना है। कवि तत्कालीन परम्परानुसार काव्य के अंत में अपने सम्बंध में अत्यन्त संक्षेप में जो उल्लेख किया है इसके अतिरिक्त अन्य कोई सामग्री उनके जीवन सम्बन्ध में उपलब्ध नहीं होती। अन्तसाक्ष्य के आधार पर इतना स्पष्ट है कि कवि ने इस काव्य की रचना सं० १६०९ वैसाख शुक्ला एकादशी, सोमवार के दिन की थी। उनके पिता का नाम महिदास था। इस भ्रमरगीता की प्रतियां आज भी सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध हैं। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि कवि की यह कृति अत्यंत प्रसिद्ध और लोकप्रिय रही होगी। सं० १६१६ एवं सं० १८०६ में लिखित इस काव्य की दो प्रतियां डा० चिमनलाल बुटाला (कपडवंज) के यहां प्रस्तुत प्रबंध के लेखक ने देखी हैं।

पाण्डव गीता नामक एक अन्य काव्य रचना ब्रेहेदेव के नाम से उपलब्ध है। किन्तु यह इनकी रचना है इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता।[१]

ब्रेहेदेव रचित भ्रमरगीता बृहत् काव्य दोहन ग्रंथ १ में प्रकाशित है। इस गीता का आधार भी अन्य भ्रमर गीताओं के समान भागवत का दशम् स्कंध है। कवि ने अपनी इस 'भ्रमरगीता' को 'रढ़ियाटो रास' (रसिक रास) कहा है। इसके द्वारा कवि ने प्राचीन रास पद्धति का निर्वाह करने का प्रयास किया है। प्रेमानंद एवं दयाराम जैसे परवर्ती समर्थ कवियों पर भी ब्रेहेदेव रचित भ्रमरगीता का प्रभाव परिलक्षित होता है। श्री के.का.शास्त्री जी का अनुमान है कि 'काला सघला होये कूढ़े भरा' पद पर से शायद रसिक भक्त कवि दयाराम को 'श्याम रंग समीपे न अडु जातुं' लिखने की प्रेरणा मिली हो।[२]

१- कवि चरित : के.का.शास्त्री, (द्वि.संस्करण) पृष्ठ ३०५

२- 'रसिक कवि दयाराम ना 'श्याम रंग समीपे न जातुं' ए पद नुं मूल काणे के आ पद मां न होय। वही पृष्ठ ३०३

ब्रेहेदेव की 'भ्रमरगीता' का प्रारंभ मंगलाचरण द्वारा हुआ है। कृष्ण और गणेश जी की वन्दना के पश्चात् गुरुचरणों की महिमा का गान है। श्रीकृष्ण अपने प्यारे सखा उद्धव को ज्ञान द्वारा शोक संतप्त गोपांगनाओं को सान्त्वना प्रदान करने के लिए कहते हैं :-

"निज ग्यांन देहनि प्रिय्वउ व्रजनार दु:ख अंगइं रखे"

(पद १-४)

व्रजनारियों के लिए संदेश लेकर उद्धव जी व्रज आते हैं। नन्द एवं यशोदा पुत्र वियोग के दु:ख से व्याकुल दिखाई देते हैं। उद्धव जी उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त करने के बजाय ज्ञानोपदेश देते हैं :-

"घट घट मांहा रह्मउ व्यापि प्रगट पूरण श्री हरि।"

(पृ० २-५)

गोपियों ने कृष्ण के वियोग में जिस असह्य व्यथा का अनुभव किया है उसका चित्र उद्धव जी के सामने प्रस्तुत करती हैं। इस पर ये उन्हें ज्ञानोपदेश सुनाते हैं। अत: गोपियां भ्रमर के माध्यम से व्यंग्य करती हुई उन्हें वापस लौट जाने के लिए कहती हैं :-

"मधुकर ने मिषांतरे उद्धव ने, कहइं कि व्रज अंगना,
स्यूं सुद्धा लेवा आवियऊ ? जा दुष्ट, दूतं श्रीरंग ना।"

(८-४)

अपनी विरह व्यथा के वर्णन के साथ-साथ गोपियों ने विभिन्न उपालंभों द्वारा कृष्ण के श्याम रंग, कुब्जा आदि पर भी मार्मिक व्यंग्य किये हैं।

गोपियों की अनन्य प्रेमयुक्त बातें सुनकर उद्धव जी उनके हृदयस्थ भावों को समझ जाते हैं और उनका हृदय द्रवित हो उठता है। उनकी आंखों में आंसू उमड़ने लगते हैं आंखें विरहिणी गोपियों के प्रेम की प्रशंसा करते हैं :-

"वलती वांणी उद्धव उचारि नेहडु देखी नयणे जल भरि,
नयण रसालां वली वली सांभरि विहीणी केरी परशंसा करि।"

(कडवुं १४)

फिर भी ज्ञानमार्ग के समर्थक उद्धव जी एक बार अपने द्रवित हृदय को रोककर पुन: ज्ञानमार्ग की बातें करने लगते हैं। वे जीव, जगत, आत्मा और परमात्मा सम्बंधी बातें करते हुए हृदय कमल में कमलापति के निवास का निर्देश करते हैं -

"अंतरयामी ते अलगुं नथी सदि कमल मां ते छि कमलापति।"

(कडवुं १६)

परन्तु गोपियों के मन तो प्रेमस्वरूप लीला बिहारी कृष्ण के आबद्ध थे। ज्ञान की शुष्क एवं नीरस बातों का उन पर कतई प्रभाव न पड़ा। गोपियां योग, सन्यास और मोक्ष के प्रति उपेक्षा भाव से देखती हैं। वे उद्धव के लम्बे चौड़े ज्ञानोपदेश का उत्तर एक साथ संक्षेप में देते हुए कहती हैं कि उनका मन कृष्ण के साथ जुड़ा हुआ है, जो अलग नहीं किया जा सकता।

"व्रजनार नुं मन कृष्ण सरखुं, विधातार सबल जडयुं"

(२१-४)

गोपियों का मन तो कृष्ण की रूप माधुरी पर मुग्ध है। निराकार के उपासक ज्ञानी उद्धव की उनके सामने पराजय होती है। विरह व्याकुल गोपियां उद्धव के समक्ष कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का तन्मयतापूर्वक गान करती हैं और उन्हें विभिन्न लीलाओं का वर्णन बताती हैं। उनकी अनन्य प्रीति से प्रभावित उद्धव मथुरा जाकर श्रीकृष्ण के सम्मुख इसका वर्णन करते हैं। श्रीकृष्ण के हृदय में भी गोपियों की स्मृति बनी हुई है। वे कुरुक्षेत्र में उनसे मिलने का वादा करते हैं -

"व्रज नारी नी वाणी सूणी, श्रीकृष्ण जी ईम उरि धरि ;
कुरुक्षेत्र -मांहि म्यलीशि उद्धव, ए गोपिका मुझ नवि विसरि।"

(३६-६)

काव्य के अन्त में महात्म्य का उल्लेख मिलता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रेहेदेव ने एक पद ब्रजभाषा में लिखा है। कवि ने कृष्ण के प्रदेश की भाषा का प्रयोग करके आराध्य के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है। इस पद में प्रेम-प्रीति की महत्ता का गान है -

'प्रीति बनाई ऐसी नीकी, नहि रे वीरा दिवस चार की
प्रति बनी वे भव की । (ध्रुवपद) (पद७)

ब्रजभाषा में लिखित यह पद इस बात का प्रमाण है कि कवि का उक्त भाषा से निकट का संपर्क रहा होगा । संभव है कवि ने व्रज प्रदेश की यात्रा भी एक या अनेक बार की हो ।

ब्रेहेदेव की भ्रमरगीता मुख्यत: करुण विप्रलंभ शृंगार प्रधान काव्य है । इस विरह वर्णन में कवि ने नारी हृदय की कोमलता का आद्यंत परिचय कराया है । वियोगिनी नायिका के कोमलतम भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति का ब्रेहेदेव कृत भ्रमरगीता एक उत्कृष्ट उदाहरण है । डा० मंजूलाल मजमूदार और श्री के.का. शास्त्री जैसे मध्यकालीन गुजराती साहित्य के प्रसिद्ध आलोचकों ने इस रचना को काव्य-सौष्ठव की उत्कृष्टता के कारण महत्वपूर्ण कहा है ।[१]

भीम वैष्णव : (सं० १६३०) :

'हरिलीलाषोडशकला' के रचयिता कवि भीम के पचास वर्ष पश्चात् इस द्वितीय भीम के आविर्भाव का अनुमान श्री के.का.शास्त्री जी ने किया है ।[२] इस कवि के जीवन एवं साहित्य के सम्बंध में बहुत कम सामग्री उपलब्ध होती है । डा० चिमनलाल तुटाला ने 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर उनके राजा होने का उल्लेख किया है । वैष्णव बनने के पश्चात् ये अपना राज्य छोड़कर व्रज के निवासी बन गए थे ।[३] फिर भी उपयुक्त प्रमाणों के अभाव में उनके जन्मस्थान, वंशादि के सम्बंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है ।

१- (१) "रस भाषा अने पद बंध नी दृष्टि ए पण ब्रेहेदेव नी भ्रमरगीता नुं खूब महत्व छे
गुजराती साहित्य नां स्वरूपो : डा० मंजूलाल मजमूदार, १९५४ पृ०४३८

(२) "कविए आदि की अन्त पर्यन्त स्त्री हृदय नी कोमलता बतावा मां जरा पण स्खलन कर्यु नथी. विप्रयुक्ता नायिका ना हृदय नी दशा केवी होई शके, एनो गुजराती साहित्यमा 'भ्रमरगीता' एक सारो नमूनो कही शकाय." कवि चरित्र : के.का.शास्त्री, द्वितीय संस्करण, पृ० ३०४

२- कवि चरित्र : के.का.शास्त्री (द्वि.सं०) पृ० २८७

३- अनुग्रह : मासिक पत्रिका वर्ष २१ अंक २, पृ० ९ से ११

कवि भीम की अद्यावधि मात्र एक रचना `रसिक गीता` ही उपलब्ध होती है। कवि ब्रह्मदेव कृत भ्रमरगीता के समान इसकी भी पर्याप्त हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त होती हैं। गुजराती हस्तप्रतियों की संकलित सूची में १३ प्रतियों का उल्लेख मिलता है। डा० योगेन्द्र त्रिपाठी के निजी संग्रह में सौराष्ट्र के किसी भक्त द्वारा लिखित `रसिक-गीता` की हस्तलिखित प्रतिलिपि अनुसंधित्सु ने स्वयं देखी है। इसमें साधारण पाठभेद के सिवाय अन्य कोई उल्लेखनीय विशेषता परिलक्षित नहीं होती। हस्तलिखित प्रतियों का विपुल प्रमाण में उपलब्ध होना उनकी तत्कालीन लोकप्रियता का द्योतक है। `रसिक गीता`, `रस गीतो`, `उद्धव-गीता` और `भ्रमरगीता` जैसे विभिन्न नामों से प्रसिद्ध यह काव्य १३५ कड़ियों में लिखा गया लघुकाव्य है। इसका सर्व प्रथम प्रकाशन बृहत् काव्य दोहन भाग-६ में हुआ था। डा० तारापोरवाला ने भी सेलेक्शन फ्राम क्लासीकल गुजरात लिटरेचर वोल्यूम १ में इस रचना को स्थान दिया है।

काव्यारंभ में श्रीगणेश आदि के मंगलाचरण की प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा में वैष्णव धर्मावलंबी-विशेषकर के पुष्टिमार्गीय कवियों ने परिवर्तन किया है। श्रीगणेश स्तुति के स्थान पर ये कवि हरिकृष्ण की वंदना करते हैं या बिना किसी देव विशेष की स्तुति के काव्यारंभ करते हैं। वैष्णव पुष्टिमार्गीय कवियों के समान कवि भीम ने भी भ्रमरगीता के प्रारंभ में किसी देव विशेष का स्तवन करते हुए सभी वैष्णवों को प्रणाम्य कहा है -

`सकल वैष्णव जन रे, तमने हुं प्रणयुं ;
मने सुध-बुध देजो रे, तमने हुं प्रणमुं ।। १ ।।`

महोदधि से महान् कवियों की तुलना में अपने आपको अल्पमति कहकर भीम ने अपनी विनम्रता का परिचय दिया है।

उद्धव जी ज्ञानमार्ग के उपासक थे। वे अपने आपको श्रेष्ठ समझते थे। उनके इस अहंभाव को दूर करने के लिए भीम के कृष्ण उद्धव जी को व्रज भेजने का उपक्रम करते हैं :-

एक समय कृष्ण उद्धव रे, बेठा वातो करी,
उद्धवे मन आण्युं रे 'अमो मोटा हरि'
एवुं अभिमान ज्यारे रे, उद्धवे मन आणीउ
'हवे एहने गोकुल मोकलुं रे' हरि मन जाणीउ ।। ८ ।।

सूर ने भी उद्धव को व्रज भेजने के पीछे इसी आशय का चित्रण किया है -
'अति सुन्दर तन स्याम सरीखो देखत हरि पछिताने ।
ऐसे को कैसी बुधि होती व्रज पठवै तब आने ।।
या आगे रस-काव्य प्रकासे जोग वचन प्रगटावे ।
सूर ज्ञान दृढ़ याके हिरदय जुगति न जोग सिखावै ।।[१]

व्रज में आने पर उद्धव जी को नंद एवं यशोदा के साथ वार्तालाप में अपूर्व वात्सल्य के दर्शन होते हैं । नंद एवं यशोदा उस सौभाग्यपूर्ण दिन की प्रतीक्षा में हैं जब उन्हें अपनी आंखों के तारे प्यारे पुत्र के दर्शन हो सकेंगे :-

'उद्धव जी । आणी आंखे रे, सुत मुख देखीशुं ,
दिवस त्यारे उद्धव रे, लेखे करी लेखीशुं ।। २४ ।।

दूसरे दिन प्रात:काल में उद्धव जी की गोपियों से भेंट होती है । उन्हें देखकर भोली भाली गोपियां आपस में अत्यंत प्रसन्न होती हैं और अपने प्रियतम का मौखिक या लिखित संदेश सुनाने का उनसे अनुरोध करती हैं :-

'अरे प्रणाम उद्धव रे । तमो भले आवीआ ;
अमने कृष्णे काहाव्युं रे, लख्युं कांई लावीआ ?३२।।

गोपियों की आशा के विपरीत उद्धव जी उन्हें ज्ञानमार्ग का उपदेश देते हैं और सगुण भाव के प्रति व्यंग्य करते हैं । वे योगमार्ग का अनुसरण करके ब्रह्म का हृदय में ध्यान धरने के लिए कहते हैं :-

'तमो सर्वनार सेवो रे, योग ध्यान धरी ;
तमने सही मलशे रे, केवल नर हरि ।। ३७ ।।'

१- सूरसागर : सं० श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, ना० प्र० स० पद : ४०३६

गोपियां उद्धव के इस ज्ञानमार्ग-योगमार्ग का प्रतिकार करते हुए कहती हैं कि जिसे आप हरि कहते हैं वह ईश्वर अक्षर ब्रह्म का अधिपति है। ऐश्वर्यादि छः धर्मयुक्त वह ब्रह्म अधिक से अधिक सुख संपत्ति या मोक्ष प्रदान कर सकता है किन्तु वह भक्तों के हृदयस्थ भावों को परितोष प्रदान नहीं कर सकता। उद्धव जी के योगोपदेश को गोपियां विषकथा समझती हैं। उन्हें तो रसयुक्त साकार भक्ति ही पसन्द है। उनके अभिप्राय में प्रेम स्वयंभू है जो सिखाया नहीं जा सकता। उनके प्रियतम मथुरा नहीं गये वे तो उनकी आंखों में समाहित हैं :-

"ओधव जी विषकथा लाव्या जर जोगनी।
व्रज मां वात कीजे, भली रसयोनी ।।

\+ \+ \+

प्रेमनुं लक्षण उधो। न आवे शीखव्युं,
अमारो नाथ ओधा, मथुरा नथी गयो,
तेने दृष्ट न देखे, आंखों मां छपी रह्यो।"

गोपियों के माध्यम से कवि ने निर्गुण पर सगुण की और ज्ञान पर भक्ति की विजय बताई है। विभिन्न उदाहरणों द्वारा योगमार्ग की भर्त्सना करते हुए सगुण मार्ग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। गोपियां कहती हैं कि जिस प्रकार विषपान मनुष्य को निश्चेतन बना देता है, उसी प्रकार योग मार्ग भी उसे जड़ बना देता है। योगमार्ग के अनुसरण से आत्मदर्शन तो संभव है किन्तु परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हो सकता। योगमार्ग को गर्दभ सवारी और उधार लिए हुए धन के समान कहा है जबकि सगुण भक्ति-मार्ग को गज सवारी और संचित धन के समान सुखप्रद कहा है। गोपियों के मन कृष्ण के साथ तदाकार, तद्रूप और तन्मय हो गये हैं अतः योगमार्ग का अनुसरण करना अब उनके लिए असंभव-सा है। उनके हृदय की इस सच्चाई से अभिभूत उद्धव जी अन्त में परास्त होकर उनके पाद स्पर्श की इच्छा व्यक्त करते हुए कहते हैं :-

"हवे कृतकृत्य थयो रे, उद्धव जी चरण वन्दे ।। ६७ ।।"

जो उद्धव जी गोपियों को ज्ञानोन्मुख करने आये थे वे अब प्रेमभक्ति की प्रतिमास्वरूपिणी गोपियों के शिष्य बन जाते हैं और ब्रज-भक्ति की कामना करते हैं। वे मथुरा जाकर श्रीकृष्ण को जो संदेश सुनाते हैं उसमें भी प्रेमभक्ति से अभिभूत उनके हृदय की झलक मिलती है।

हुं तो मतिमंद प्रभु रे। व्रज निंदा करी ;
महा अपराध पड्यो रे, जिम्मा मापे भरी ।। ११७ ।।

'रसिक गीता' में पुष्टिमार्गीय विचारों की स्पष्ट झलक मिलती है। विरहानुभूतिमूलक भक्ति की प्रस्थापना के लिए आचार्य प्रवर महाप्रभु वल्लभाचार्य जी एवं श्री विट्ठलनाथ जी के प्रादुर्भाव का कवि ने उल्लेख किया है -

तेणे क्षेत्र श्री वल्लभकुल रे, देहधरी आविया ;
मली व्रजनार सर्वे रे, पोतीडे वधाविया।
तिलक माता शापां रे, सुधर्म प्रकासिऊ
प्रगटी विट्ठलेश्वर रे, गोकुल वासीऊ।(१३१-१३३)

कवि नरसिंह के समान भीम ने भी भक्ति की याचना करते हुए काव्य का समापन किया है। भीम की 'रसिक गीता' ऐसी सुन्दर काव्यकृति है जिसकी तुलना नंददास रचित भ्रमरगीत के साथ की जा सकती है। गुजराती भाषा के भाव समृद्ध काव्यों में यह कृति निश्चय ही उल्लेखनीय है।

विश्वनाथ जानी :

कवि विश्वनाथ जानी उत्तर गुजरात स्थित पाटण शहर के निवासी थे। अद्यावधि उनकी तीन रचनाएं प्रकाशित हुई हैं - (१) मोसाला चरित्र,(२)सगालसा-चरित्र और(३) प्रेम पचीसी। इनमें से 'प्रेम पचीसी' भ्रमरगीत काव्य परम्परा के अंतर्गत परिगणनीय रचना है। भागवत के दशम स्कन्ध स्थित गोपी उद्धव-संवाद पर आधारित रचना होने पर भी यह पर्याप्त मौलिकतापूर्ण कलात्मक काव्य रचना है। 'प्रेम पचीसी' का सर्वप्रथम प्रकाशन गुर्जर काव्य में हुआ था।

काव्यारम्भ में ही कवि की मौलिकता दर्शनीय है। मथुरा का जीवन ऐश्वर्य - युक्त होने पर भी श्रीकृष्ण का मन उदास रहता है। उनकी उदासी और अप्रसन्नता का कारण देवकी की समझ में नहीं आता। उनके नयनों से निःसृत अश्रुधारा को देखकर वे अप्रसन्नता का कारण जानने के लिए जिज्ञासापूर्वक पूछती हैं :-

"कहे देवकी श्रीकृष्ण ने, सांभल्य माहरा तन।
मोहन जी मथुरां विषे, शे नथी मानतूं मन ।।"

देवकी येन केन प्रकारेण अपने पुत्र की परेशानी का कारण जानकर उसको दूर करने का उपाय करना चाहती हैं। वे उन्हें सभी अभावों की पूर्ति करने का आश्वासन देती हैं। इस पर भी श्रीकृष्ण की अन्यमनस्कता दूर नहीं होती। वसुदेव भी उन्हें अनेक प्रकार से समझाने का प्रयत्न करते हैं। वे उन्हें मयूरपिच्छ के मुकुट का आकर्षण छोड़कर स्वर्ण और रत्नजड़ित, किरीट धारण करने और गोचारण का मोह त्यागकर राज्य-वैभव को स्वीकार करने के लिए समझाते हैं। किन्तु श्रीकृष्ण के लिए तो नवनिधि और अष्टसिद्धियों से भी अधिक मूल्यवान व्रज का एक अंजलीभर तक्र है -

"प्रीतिमां प्रीत पाम्यो घणुं, व्रजवासी ने वास।
अष्ट सिद्ध नवनिध थी अधिक एक अंजलि छाश ।।

(पद ८)

दूसरे पद में श्रीकृष्ण द्वारा उद्धव को व्रज भेजने का वर्णन है। माता यशोदा के वात्सल्यपूर्ण हृदय की मूर्ति उनके स्मृति पटल पर आज भी अंकित है। ग्यारहवें पद में गोपांगनाओं की स्मृतियों से उनके भाव विह्वल हृदय का चित्रण है। जब से व्रज छोड़कर श्रीकृष्ण मथुरा आए हैं उन्हें अन्न जल कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वे अहर्निश व्रज वासियों का स्मरण करते रहते हैं। उनके हृदय में प्रज्ज्वलित विषम विरह की ज्वाला को शब्दांकित करने में कवि को सफलता मिली है।

तेरहवें पद में उद्धव जी के व्रज पहुंचने का वर्णन है। उन्हें देखकर नन्द यशोदा को अतीव प्रसन्नता होती है। कमलनयन श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं के स्मरण द्वारा वे भाव विह्वल हो उठते हैं और उनकी आंखों से आंसुओं की स्रोतस्विनी का प्रवाह उमड़ने लगता है। यशोदा का जी मोहन का प्यारा मुख देखने के लिए मचल उठता है।"

वे उनके कपोल का चुम्बन ले ले उन्हें अपनी गोद में बैठाना चाहती हैं और उनके मुख से मां ! शब्द सुनना चाहती हैं। पुत्र विरह में व्याकुल यशोदा के असह्य दु:ख का वर्णन नन्द भी उद्धव के समक्ष करते हैं और उनके प्राण बचाने के लिए श्रीकृष्ण को व्रज बुलाना चाहते हैं।

दूसरे दिन प्रात:काल में मात्र उद्धव जी को देखकर गोपियां रोती और बिलखती हुई श्रीकृष्ण के नहीं आने का कारण पूछती हैं। विश्वनाथ जानी ने भ्रमर प्रवेश का उल्लेख नहीं किया है। श्रीकृष्ण का व्रजागमन नहीं हुआ इसलिए गोपियों ने उन्हें अनेक उपालंभ दिये हैं इसलिए वे शायद गोकुल नहीं आये। मथुरा की नागरी नारियों की तुलना में अहीर नारियों की क्या गणना ? कंस की दासी कुब्जा को चूड़ियां पहनाने वाले श्याम को वे 'काला-कपटी' तक कहती हैं।

उद्धव जी गोपियों को ज्ञानोपदेश देते हुए हरि की सर्वव्यापकता पर प्रकाश डालते हैं। वे इसके द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि एक क्षण भी श्याम गोपियों से भिन्न नहीं हैं। ईश्वर के इस निराकार सर्वव्यापी रूप का वर्णन करते हुए कवि विश्वनाथ जानी ने भी पूर्व प्रचलित परम्परा का अनुसरण करते हुए एक पद व्रजभाषा में लिखा है। गुजराती कवियों का व्रजभाषा से अच्छा परिचय एवं आकर्षण मध्ययुगीन भक्ति-काव्य में दिखाई देता है। ब्रह्म की सर्वव्यापकता युक्त ज्ञानात्मक इस लम्बे पद की कतिपय पंक्तियां द्रष्टव्य हैं -

'कृष्ण जां हां दूर हे
ज्यूं अक्षर में नाम, नाम में अक्षर आवे ;
ज्यूं कंकण में हेम, हेम कंकण में काहावे,
दीपक में पावक बसे, पावक दीपक एक
तेसे तुममें हरि बसे, समझो करी विवेक
ज्यूं पुष्प में बास, बास से पुष्प पहिचानो
ज्यूं घट में गोविन्द, घटे करी गोविन्द जानो ।।

(पद १८)

उद्धव की इस ज्ञान गठरी से गोपियों की हृदय व्यथा दूर नहीं होती। वे शिकायत भरे स्वर में कहती हैं दीप पतिंगों के हृदय की व्यथा को नहीं जानता -

"दीप न जाणे पतंग तणी व्यथा" (पद १६)

गोपियां सगुण की उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए निराकार को तक्र और साकार को नवनीत कहती हैं। अमृत से भी अधिक मधुर मोहन की मुरली का स्वर उनके कानों में आज भी गूंज रहा है। वे स्वर्ग और अपवर्ग के सुख की कामना नहीं करतीं। उन्हें तो नंदनंदन की लीलाओं के स्मरण मात्र से अवर्णनीय सुखानुभव होता है। भाव विह्वल गोपियां विभिन्न लीलाओं का वर्णन उद्धव के समक्ष करती हैं। उनके विरह व्याकुल हृदय की व्यथा से उद्धव का कठोर हृदय द्रवीभूत हो उठता है। गोपियों के हृदयस्थ प्रेम के सामने ज्ञानी उद्धव पराजित होते हैं। व्रजपतिताओं के नयनजल में उन्हें मथुरा के कृष्ण से भिन्न उनके प्रेम स्वरूप के दर्शन होते हैं। व्रज-वासियों के हृदय वैभव से वे इतने अधिक प्रभावित होते हैं कि उनके चरणों की धूली अपने सिर पर धारण कर अपने को धन्य समझते हैं -

"चरण-रेणु रामानी उपर माथुं हुं उतारी ;
पुण्य ताणी रेखा को प्रगटी, आं हां आवतां मारी ।।"

गोकुल आकर उनका अहंकार दूर हो जाता है और वे अपने आपको कृतार्थ समझते हैं उन्हें विश्वास हो जाता है कि प्रेम के अभाव में पुरुषोत्तम की प्राप्ति असंभव है और गोपियों के समान अनुरागी स्वर्ग, मृत्यु और पाताल में कोई नहीं है। गोपियां-उनसे कहती हैं कि हम तो भोली अहीर अबलाएं हैं, ज्ञानोपदेश तो नगर की उन कुशल नारियों को देना चाहिए जो मुख से मधुर वचन बोलती हैं किन्तु उनके अंत:करण में कुछ अन्य भाव होता है। हम पर जो रंग चढ़ा है वह अब नहीं उतर सकता। अन्त में उद्धव गोपियों के हृदय की सच्चाई और अनन्तअपार प्रेम देखकर कृतार्थता का अनुभव करते हुए दोनों हाथ जोड़कर मथुरा जाने की आज्ञा चाहते हैं। उन्हें मथुरागमन की अनुमति देते हुए नंद जी अत्यंत आर्तस्वर में अपनी असहायता का वर्णन करते हैं। कमल लोचन कृष्ण का मुख देखने के लिए उनका मन तरस रहा है। वे अत्यन्त व्याकुल होकर करुणा भरी वाणी में कहते हैं कि हे प्राणाधार। एक बार अवश्य आओ, मात्र दस दिन रहकर चले जाना :-

"आवो जी एक बार आना । आवो जी एक बार ।
दिन दश रहीने चालज्योजी, प्राण तणा आधार ।।
(पद २५)

भक्ति-रस प्रधान 'प्रेम पचीसी' में कृष्ण विरह में विह्वल व्रजांगनाओं के हृदय की मार्मिक व्यथा का निरूपण सफलतापूर्वक हुआ है।[1] एक प्रकार से सम्पूर्ण काव्य करुणा के कणों से आर्द्र है।[2]

महाकवि प्रेमानन्द : (सं० १७०१ से १७७५) :

बड़ौदा निवासी महाकवि प्रेमानंद का नाम आख्यानकार के रूप में मध्यकालीन गुजराती साहित्य में आज भी स्वर्णाक्षरों से अंकित है। भ्रमरगीता काव्य परम्परा के अन्तर्गत 'भ्रमरगीता' एवं 'भ्रमर पचीसी' रचनाओं द्वारा वे अपना नाम अमर कर गये हैं। इन दोनों रचनाओं में इन्होंने ज्ञान और भक्ति की दब अविरल धारा प्रवाहित की है। इन्होंने दशम स्कंध स्थित मूलभावों को आत्मसात कर तत्कालीन सामाजिक वातावरण के अनुकूल भावाभिव्यक्ति द्वारा निश्चय ही मौलिकता प्रदान की है। मानव हृदय को परखने की अपनी अद्भुत क्षमता द्वारा कवि प्रेमानन्द इस पौराणिक प्रसंग को नवीन परिवेश में सफलतापूर्वक व्यक्त कर सके हैं।

१- "पचीस पद नी भक्ति रसे छलकाती आ नानकड़ी करुण रस प्रधान सुन्दर काव्यकृति मां श्रीकृष्ण नां जन्मदाता तेमज पालक माता पिता नुं कृष्ण-वात्सल्य, कृतज्ञभावे उभराते श्रीकृष्ण नो नंद अने यशोदा प्रत्येनो भक्ति भाव ~~[illegible]~~ अने कृष्ण विरहे विह्वल व्रजांगनाओनी प्रेमलक्षणा कृष्ण-भक्ति ए सर्वेनुं असरकारक निरूपण थयुं छे."
गुजराती साहित्य (मध्यकालीन) : अनन्तराय म. रावल, १९५४ पृष्ठ १४२

२- "'प्रेम पचीसी' मां भागवत मांथी लीधेली 'उद्धव संदेश' नी कथा छे. तेमांये कृष्णना विरह मां झूरता गोकुलवासीओ ना संदेशा मुकीने नेणे करुण रसनी ज जमावट करेली छे।"
गुजराती साहित्य नी विकास रेखा : धीरुभाई ठाकर,
तृतीय संस्करण - पृष्ठ-५५

(क) भ्रमरगीता :

पूर्ववर्ती कवियों के समान प्रेमानन्द ने भी भागवत के दशम स्कंध का अनुवाद किया है। उनकी ये भ्रमरगीता दशम स्कंध के अंतर्गत होने पर भी एक स्वतंत्र काव्य रचना के समान महत्वपूर्ण है। काव्य के प्रारंभ में ही कवि ने श्रीकृष्ण विरह में व्याकुल गोपियों के हृदय की व्यथा को मार्मिक शब्दों द्वारा व्यक्त किया है। अपने प्रियतम मनमोहन को मिलने की तीव्र उत्कण्ठा से गोपियां व्याकुल हैं। विरहिणी ब्रज वनिताओं के हृदय की व्यथा कुब्जा का स्मरण होते ही बढ़ जाती है। उनकी आंखों में से आंसुओं की अविरल धारा प्रवाहित होती रहती है। दीनजनों के अश्रु पोंछनेवाले मथुरा स्थित अन्तर्यामी कृष्ण उनकी वेदना का परिचय पाकर अपने प्रिय सखा उद्धव जी को योगमार्ग का संदेश लेकर गोपियों के पास भेजते हैं।[१]

संध्या समय ब्रज पहुंचकर नन्द यशोदा को ज्ञानोपदेश देते हुए उद्धव जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण जो परब्रह्मरूप हैं उनका किसी के यहां अवतरित होना कैसे संभव है? यशोदा श्रीकृष्ण को ब्रह्म रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होतीं। उनके मन में श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव है जिसमें कोई परिवर्तन संभव नहीं। वात्सल्य भाव के उद्रेक द्वारा जिस प्रकार बाढ़ के समय पानी का प्रवाह सरिता के तटों को लांघ जाता है उसी प्रकार यशोदा का हृदय भावों से छलक उठता है। बालकृष्ण को ऊखल से बांधना, गोरे मुंह पर केशराशि का लटकना, गोरे गालों पर कुण्डलों का प्रतिबिम्बित होना, पानी में चन्द्र के प्रतिबिम्ब को चन्द्र समझकर पकड़ने का प्रयत्न करना, मिट्टी खाना आदि बाल सुलभ प्रवृत्तियों का यशोदा के मुख से कवि ने सजीव चित्रण किया है। वे अपने आपको कृष्ण की मां ही समझती हैं :-

"त्रण भुवन नो नाथ, चारे केम गाबड़ी रे ?
प्रेमानन्द प्रभु नी हुं तो बू प्रभु नी मावड़ी रे।"

(कडवुं १२७)

१- प्रेमानन्द कृत दशम स्कंध : अध्याय ४६ पद(कडवुं) १२५

दूसरे दिन प्रात:काल में नंद के द्वार पर रथ देखकर गोपियों को आक्रूर के पुनरागमन का संदेह होता है। उन्हें सारथी पर क्रोध आता है और वे रथ-भंग करने के लिए तत्पर होती हैं। जब सारथी चिल्लाने लगता है तब उद्धव जी बाहर आते हैं- जैसे नवीन प्रसंगों की उद्भावना द्वारा समर्थ कवि प्रेमानन्द ने हास्य का पुट मिलाया है। यह प्रसंग कवि की उर्वर कल्पना शक्ति का परिचायक है। अपनी गहरी सूझ-बूझ को लेकर कवि विषय-विस्तार कर सका है।

गोपियों द्वारा कृष्ण के प्रति अनेक उपालंभ दिये गये हैं। वे उनके कुब्जा के प्रति आकर्षण को लेकर उन्हें विवेकशून्य कहती हैं। उनकी कथनी और करनी में साम्य नहीं है कहकर अपना रोष व्यक्त करती हैं। उद्धव जी गोपियों की विरह कातरता देखकर एक बार तो उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं किन्तु दूसरे ही क्षण जब अपने स्वभाव के अनुसार ज्ञानोपदेश देना आरंभ करते हैं तो वे उन्हें ही सन्यासी बन जाने के लिए कहती हैं।[१] वे किसी भी स्थिति में सगुण भक्ति का त्यागकर निर्गुण यानी ज्ञानमार्ग को अपनाने को तैयार नहीं। सूर के समान प्रेमानंद की गोपियां भी सगुण भक्ति को अमृत घट के समान घोषित करती हैं। श्रीकृष्ण के प्रेम का अमृत उनके सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। गोपियों के इस कृष्ण-प्रेम के समक्ष उद्धव को नत-मस्तक होना पड़ता है।

गोपी-उद्धव संवाद सुनने के लिए स्वयं श्रीकृष्ण मथुरा से भ्रमर का रूप धारण कर आते हैं। रोषभरी गोपियां उन्हें भ्रमर के माध्यम से अनेक उपालंभ देती हैं। पंकज-सी राधा का परित्याग कर धतूरे के फूल-सी दासी कुब्जा के मोहपाश में आबद्ध रसलोलुप भ्रमर के समान कृष्ण के प्रति मार्मिक व्यंग्य किया गया है :-

"राधा पंकज परहरी, कीधो दासी धतुरे विश्राम"।

(पद (कडवुं) १३२)

१- प्रेमानंद कृत दशम स्कंध, अध्याय ४६ पद १३०

जब उद्धव जी विभिन्न दृष्टांतों द्वारा गोपियों को यह समझाने का प्रयत्न करते हैं कि श्रीकृष्ण पर ब्रह्मरूप हैं और ज्ञानमार्ग ही अनुकरणीय है तो प्रत्युत्तर में वे ज्ञानमार्ग की भर्त्सना करती हैं। वे भक्तिमार्ग को द्राक्ष के समान मधुर बताते हुए कहती हैं कि हम अहीर लोगों के लिए तो श्रीकृष्ण ही सर्वस्व हैं। ज्ञान या योगमार्ग हमारे लिए व्यर्थ है।[१] गोपियां व्यंग्यपूर्वक योगमार्ग का उपदेश कुब्जा को देने के लिए उद्धव जी से कहती हैं। इस प्रकार भक्ति और ज्ञान, सगुण और निर्गुण तथा साकार और निराकार के भव्य द्वंद्व का चित्रण हुआ है।

प्रेम स्वरूपा गोपियों की कृष्ण निष्ठा से अभिभूत उद्धव जी अपनी पराजय स्वीकार करते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। उनकी यह पराजय ज्ञान पर भक्ति की विजय है। पूर्ववर्ती गुजराती भ्रमरगीताओं का अनुसरण करते हुए महाकवि प्रेमानंद ने भी कृति के अंत में माहात्म्य वर्णन किया है :-

"संवाद उद्धव गोपिकानो भणे अथवा सांभले रे।
ए ब्रजलीला भ्रमरगीता, पंच महापातक परजले रे।।"

(कडवुं १३६)

महाकवि प्रेमानंद ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं एवं पूर्ववर्ती कवियों द्वारा वर्णित मार्मिक प्रसंगों का प्रभाव ग्रहण कर भ्रमरगीत प्रसंग को व्यापक सौन्दर्य प्रदान किया है।

(ख) प्रेम-पचीसी :

महाकवि प्रेमानंद रचित 'प्रेम पचीसी' भ्रमरगीता काव्य परम्परा के अन्तर्गत परिगण्य एक स्वतंत्र काव्य रचना है। छन्द संख्या को विषय के साथ सम्बद्ध करके नामकरण की प्राचीन परिपाटी का अनुसरण करते हुए कवि ने २५ पद-युक्त इस काव्य को 'प्रेम-पचीसी' कहा है जो अत्यंत स्वाभाविक है। काव्यारंभ में ही मथुरा स्थित

१- प्रेमानन्द दशम स्कंध, अध्याय ४६ पद १३४

श्रीकृष्ण की अन्यमनस्कता का सजीव चित्रण कवि ने अंकित किया है। मथुरा का जीवन वैभवयुक्त होने पर भी उन्हें एक क्षण के लिए भी गोकुल का विस्मरण नहीं होता -

"एक घड़ी रे मुने नथी विसरती, श्रीगोकुल न क्रीडा जी।
माता-पिता यमुना वृंदावन, वांसलड़ी गोवालजी।।"

(पद १)

विरह संतप्ता गोपियों को योगमार्ग का उपदेश देने के लिए श्रीकृष्ण अपने प्रियसखा उद्धव जी को व्रज भेजते हैं -

"योग आपजो व्रजनारी ने, आत्मज्ञान कांई आवे रे।"

(पद १)

कृष्ण के स्थान पर मात्र उद्धवागमन देखकर जिस प्रकार जहाज के डूबने का समाचार सुनकर व्यापारी का हृदय टूट जाता है। उसी प्रकार कृष्णदर्शनोत्कंठित व्रजवासियों को गहन निराशा का अनुभव होता है। बालकृष्ण की लीलाओं के स्मरण द्वारा यशोदा जी का हृदय वात्सल्य से आप्लावित हो उठता है। अपने प्यारे पुत्र का वियोग उनके लिए असह्य है। वे अत्यंत आर्त स्वर में उद्धव जी से कहती हैं -

" मैं कृष्ण जी को अपना प्यारा पुत्र समझती थी। मैंने उसके मलमूत्र धोये किन्तु जिस प्रकार कोकिला के बच्चों को कौआ संरक्षण प्रदान करता है और बड़े होने पर वे उड़ जाते हैं, उसी प्रकार कृष्ण मुझे छोड़कर चले गये। अब मेरे लिए आंसू बहाने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं रहा है।"[१] मध्यकालीन समाज में प्रचलित विश्वासों के दर्शन नंद एवं यशोदा के शब्दों में होते हैं। वे वसुदेव एवं देवकी द्वारा अपना पुत्र जबर्दस्ती छीन लेने का अभियोग लगाते हैं और उनके इस कृत्य का बदला ईश्वर जरूर लेगा ऐसी उनकी निश्चित धारणा है -

"शुं लेई जाशे देवकी, जेणे लीधो मारो पुत्र ?
परमेश्वर एने पूछशे, मारा उजाड्युं घर।"

+ + +

१- प्रेम पच्चीसी : प्रेमानंद, पद-४

अमो रंक ने वसुदेव राजा, बल बिना बोलीए शानेरे ?
परमेश्वर आगल न्याय थाशे, जो लख्युं नीकलशे पाने रे ।"

(पद-७)

विरह विधुरा गोपियों को प्रथम तो उद्धव जी यह विश्वास दिलाते हैं कि श्रीकृष्ण का मात्र गात्र मथुरा में है, उनके मन प्राण तो गोकुल में हैं और वे निरन्तर उनका स्मरण करते रहते हैं -

"हरिनुं मन अहींया छे, त्यां गात्र, नथी वीसरता तमो पल मात्र ।
'गोपी' 'गोपी' करतां हींडे,घणु विरह तमारो पीडे ।"

(पद १२)

श्रीकृष्ण उन्हें अद्यावधि नहीं भूल सके हैं । यह जानकर प्रथम तो वे प्रसन्न होती हैं किन्तु दूसरे ही क्षण कुब्जा का ध्यान आते ही उन्हें दुःख होता है ।उन्हें आश्चर्य होता है कि सोलह हजार गोपियों को एक साधारण दासी ने हराया है -

"अमो हारी सोल हजार, दासीनो दाव पड्यो ।"

(पद १३)

चन्द्रावली, राधा, चन्द्रभागा एवं अन्य गोपियों के मुख से जो विरह वर्णन किया गया है वह गीति काव्य का अन्यतम उदाहरण है । विरहानल से उन्मत्त, उद्विग्न और किंकर्त्तव्यविमूढ़ चन्द्रावली कहती है कि प्रियतम के विरह से अंतर में जो घाव हुआ है वह किसी औषध से अच्छा नहीं होगा -

"अंतर मांहे घा पड्यो , ते औषध की नव रुझे रे,
गोकुल मांहे लेली थई चालुं, कामकाज नव सूझे रे ।।"

(पद १७)

राधा एवं कुब्जा की तुलना क्रमशः मिठाई और खटाई के साथ करके सुन्दर उपालंभ की सृष्टि की गई है -

"राधा मिठाई खाई ने मन ओसर्युं ;
कुब्जा खटाई पर मन कोड्युं ।"

(पद १८)

जब उद्धव जी कृष्ण को भूलकर योग ब्रह्म की साधना करने का उपदेश देते हैं तब गोपियों को बड़ा आश्चर्य होता है। श्रीकृष्ण द्वारा योग का संदेश भेजना उनके अभिप्राय में जले पर नमक छिड़कने के समान है -

"शामलीए योग कहाव्यो, पातलीए योग कहाव्यो रे,
दास्या ऊपर उद्धवीओ, वली लूण लगाववा आव्यो रे ।।"
(पद २३)

रोषभरी गोपियां ज्ञानमार्ग की वकालत करने वाले उद्धव जी से स्पष्ट शब्दों में कह देती हैं कि आप मथुरा लौट जाइए और योग मार्ग का उपदेश कुब्जा को दीजिए। उनके शरीर में नख से लेकर शिख तक श्रीकृष्ण ही व्याप्त हैं। उनका शरीररूपी घट श्रीकृष्ण के प्रेम से पूर्ण है, अब उसमें योग के लिए कोई अवकाश नहीं -

"बाहर भीतर रह्यो व्यापी, व्रजनो वहालो रे,
शरीर मांहे कृष्ण विना, नथी ठाम ठालो रे।"
(पद २३)

गोपियां स्पष्ट शब्दों में सुना देती हैं कि ताने-बाने के समान श्रीकृष्ण और वे एक रूप हैं -

"भाई गोपी गोविन्द नुं एक रूप छे, जेम ताणा मांहे वाणो रे।"
(पद २८)

गोपियों की इस प्रेम निष्ठा के सामने परास्त होकर उद्धव जी मथुरा लौटते हैं। काव्य के अन्त में माहात्म्य वर्णन के अन्तर्गत 'प्रेम पचीसी' के पाठ अथवा श्रवण से भवसागर से मुक्त होने का विधान मिलता है -

"यह प्रेमानंद भणे सांभले रे, ते तेरे भव संसार रे"
(पद २५)

भाव जगत के सभी पोषक तत्वों के समुचित प्रयोग द्वारा कवि ने इस रचना को अद्भुत सौन्दर्य प्रदान किया है। प्रेमानंद ने विविध पदों के प्रयोग द्वारा समर्थ पद्यकार के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

पुरुषोत्तम :

कवि पुरुषोत्तम रचित 'भ्रमरगीत' संक्षिप्त होने पर भी एक सुन्दर रचना है। कवि ने पूर्व प्रसंगों का उल्लेख न करते हुए भ्रमर प्रवेश द्वारा काव्यारंभ किया है। उनवन में उड़ते हुए भ्रमर को देखकर गोपियां श्रीकृष्ण द्वारा उसे दूत के रूप में भेजने का अनुमान करती हैं। उन्हें प्रसन्नता होती है कि कठोर हृदय के कृष्ण ने कोमल बनकर सूखी लताओं को सींचने के लिए घनरूप मधुकर को भेजा है -

"मधुकर मथुरा थी आवियो, दीसे दूत नो वेश ;
मुखे पियलो ने अंग रे श्यामलो, लाव्यो श्याम संदेश।"

+ + +

"व्रजनारी ते मूकि वेलड़ी तेने सींचवा नीर,
तजी कठणपणु कोमल थया, वहालो वैकुंठ नाथ ।।"

(पद १)

प्रियदर्शनोत्कंठिता गोपियां कृष्णदूत भ्रमर से अपने प्रियतम के आगमन के समाचार सुनाने के लिए अनुरोध करती हैं। उनके मन में एक ही प्रश्न बार-बार होता रहता है कि प्रियतम कब दर्शन देंगे :-

"कोहोने मधुकर माधवनी कथा, श्यारे करुणा निधान ;
वाहाला भाव करी ने भालशे, देशोदर्शन दान।"

(पद २)

वियोग संतप्ता गोपियों का मन आशा और निराशा के झूले पर झूलता रहता है। कभी उन्हें आभास होता है कि कुब्जा ने प्रियतम को मोहपाश में बांध लिया है, इसलिए वे नहीं आ पाते। कभी प्रियतम ही उन्हें प्रवंचक प्रतीत होते हैं। अनेकानेक भाव उनके मन में उद्भवित होते रहते हैं। कुब्जा को अपराधी सिद्ध करते हुए वे कहती हैं कि चंदन द्वारा उसने कोई ऐसा चमत्कार किया है जिससे प्रियतम ने हमारी उपेक्षा की है -

"वाहाले वाहाल तज्यो व्रजनार नो, ते तो कुब्जा नुं काम।
कांय कामण चंदन नुं कर्युं, तज्युं गोकुल गाम ।।"

(पद २)

काले कृष्ण और कुबड़ी कुब्जा की जोड़ी के निरालेपन को लेकर गोपियों ने मार्मिक व्यंग्य किया है -

" हरि आपे काला ने मलि कूबड़ी, भलि भासे छे जोड़्य ।
स्वामी पुरुषोत्तम नो रे पातलो, हींडे मोंढ़ा मोंढ़ ।"

(पद -२)

गोपियों के मन में कुब्जा के प्रति सौतिया डाह निरन्तर बना रहता है । अपने प्राण समान कृष्ण को ले जानेवाले अक्रूर को वे क्रूर कहती हैं । प्रियतम के वियोग का दु:ख उनके लिए असह्य हो उठा है । कुब्जा द्वारा प्रियतम का मोहपाश में बांधा जाना उन्हें अत्यधिक अखरता है । सपत्नी के प्रति ईर्ष्याभाव बाण के समान चुभता रहता है -

"एक साले ते श्याम वियोग नुं, बीजुं शोक्य नुं बाण ।"

(पद ४,२)

गोपियों ने अपने प्रियतम के दूत मधुकर के समक्ष अन्तर्वेदना का निरूपण अत्यंत मार्मिक शब्दों में किया है । वियोग-वर्णन की इन पंक्तियों को पढ़कर कोई भी सहृदय पाठक द्रवीभूत हो सकता है । प्रियतम के वियोग में दिन रात कटने मुश्किल हो गये हैं । अंतर में विरहाग्नि का ताप बढ़ता जारहा है । और उसकी ज्वालाएं अत्यंत जोरों से फैल रही हैं । इस असह्य ताप को लेकर उनके द्वारा सींची गई प्रेमलता सूख रही है । उसे नवजीवन प्रदान करने वाले घन नंदकिशोर हैं -

"तन ताप तपे रे वियोग नो अंगे आलस थाय ;
सो शुद्ध बुद्ध भूली रे सुन्दरी, दिन रात्य न जाय
उर अंतर त्रेहे अगनि वसे ज्वाला चाले छे जोर,
व्रजनारी ते वेल्य अगनि सूकी गई घन नंद किशोर ।"

(पद ८)

अंतिम पद में भ्रमर को 'धूर्त' कहकर व्यंग्य किया गया है । कपटी नर की भ्रमर वृत्ति के कारण कामिनी की दुर्गति होती है । प्रो० मंजूलाल मजमूदार ने पुरुषोत्तम के इन पदों का प्रकाशन 'भ्रमरगीताओं' में किया है । पुरुषोत्तम नाम के दो तीन कवियों का उल्लेख प्राचीन गुजराती साहित्य में मिलता है । भ्रमरगीत के ये

पद किन्तु किन पुरुषोत्तम द्वारा रचित हैं इसका निर्णय विद्वान अभी तक नहीं कर पाये हैं ।[1]

सुन्दर सुत :

कवि सुन्दर सुत एक विद्वान ब्राह्मण थे, जो संभव है किसी हवेली मंदिर में कथाकार रहे हों । उनकी भ्रमरगीता पर पूर्ववर्ती भ्रमरगीताकारों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । ब्रेहेदेव की भ्रमरगीता से पद संख्या ५,१४,१६,२१,२२,२४, २५,३१,३६ आदि में कतिपय पंक्तियों का साम्य प्राप्त होता है । काव्यारंभ में उन्होंने श्री गोकुल चरणों की वंदना की है । अत: उनके पुष्टिमार्गीय होने की भी संभावना है । मथुरास्थित श्रीकृष्ण के हृदय में असह्य एवं अपार दु:ख का चित्रण कवि ने प्रारंभ के पदों में किया है । व्रज का वियोग उनके मन प्राणों में बेचैनी भर देता है । उन्हें गोकुल की गोपियाँ और माता यशोदा का स्मरण बार-बार होता रहता है ।

"व्रजनार ने माहारो व्रेहे सबलो वली जनुनीतात ।
अणु एक विसारे नहीं, संभारे दिन रात ।।
(कडवुं ५)

अहर्निश अपने ही ध्यान में रत माता यशोदा और गोपियों को सान्त्वना प्रदान करने के लिए श्रीकृष्ण अपने प्रिय सखा उद्धव जी को व्रज भेजते हैं । संध्या समय जब वे व्रज पहुंचते हैं उस समय की प्राकृतिक शोभा का सुन्दर और सजीव चित्रण करने में कवि सर्वाधिक सफल रहा है -

"कला मंडित मोर नाचे, कोकिला शब्द सोहाए ,
चकोर चातक हंस सारस, मृग तणा मन मोहाए ।।"
(कडवुं ६)

गोकुल आकर उद्धव जी श्रीकृष्ण के ब्रह्मरूप की ओर संकेत करते हुए सान्त्वना प्रदान करने का प्रयत्न करते हैं किन्तु यशोदा श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं के वर्णन

१- "वैष्णव गीताओ : सं० डा० मंजूलाल मजमुदार तथा डा० चिमनलाल म. वैद्य १९६४ ई० पृष्ठ ५८

द्वारा अपना वात्सल्य भाव प्रकट करती हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल में उद्धव जी का गोपियों से मिलने का वर्णन है। उनकी आंखों से निरंतर आंसू बहते रहते हैं। विरहातुर गोपियों में मिलनोत्कंठा प्रबल होती जा रही है। भावातिरेक के कारण वे कुछ भी बोलने में असमर्थ हैं। उसी समय भ्रमरागमन होता है -

"बोलवा नहीं हवी समरथ, वहे नइणे नीर,
त्यारे त्यांहा एक भ्रमर प्रगट्यो, श्याम तेह नुं शरीर।"

(कडवुं १९)

भ्रमर के माध्यम से गोपियों ने श्रीकृष्ण के प्रति अनेक उपालंभ दिये हैं। उपालंभ देते समय भी उनकी आंखों से निरन्तर अश्रु वर्षा होती रहती है। वे श्रीकृष्ण के स्वार्थपूर्ण स्वभाव का प्रतिपादन विभिन्न दृष्टांतों द्वारा करती हैं। अब उन्हें काले रंग के प्रति ही अविश्वास हो गया है -

"रहेवा गुण गोविन्दना, रहना पाश थी छूटे नहीं,
काला सघला होए कूड़ा, कपट मंडारी सही।"

(कडवुं २६)

ज्ञानी उद्धव गोपियों के हृदयस्थ भावों से अभिभूत हो उठते हैं और मन ही मन उनकी प्रशंसा करते हैं। फिर भी श्रीकृष्ण की ओर से ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते हुए कहते हैं कि गोपियों और कृष्ण का साथ अभिन्न है, मात्र आत्मज्ञान की आवश्यकता है -

"सदा छुं तम साथ सुंदरी, एक क्षण अलगो नथी,
आत्मज्ञान ने अनुभवे, जुओ गुण दृष्टे अभी।"

(कडवुं ३३)

गोपियां उनके इस ज्ञानोपदेश का प्रतिकार करती हैं। वे स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि यह ज्ञानमार्ग हमारे लिए श्रीकृष्ण रूपधारी हीरे को छोड़कर शीशे का टुकड़ा ग्रहण करने के समान है। उनके अभिप्राय में ज्ञानमार्ग मृगजल के समान है जिससे तृप्ति संभव नहीं -

"प्रत्यक्ष मेहेली कृष्ण जी ने मृगजल नुं शुं काज ?"

(कडवुं ३४)

गोपियां योगमार्ग की भर्त्सना करते हुए कृष्ण एवं उद्धव के प्रति कतिपय कटु वचनों का उच्चारण अत्यंत स्वाभाविक रूप से करती हैं। श्रीकृष्ण हमें योग का संदेश भेजते हैं किन्तु वे स्वयं भोग में डूबे हुए हैं -

"श्रीमुखे अमने जोग कहाव्यो, भोग नगर नी नार"

(कडवुं ३५)

गोपियों की स्नेहपूर्ण भक्ति द्वारा उद्धव जी आश्चर्य मुग्ध होकर अपनी पराजय स्वीकार करते हैं। उनके मथुरा प्रत्यागमन के समय सभी व्रजवासी एकत्र होकर भेंट की सामग्री देने के पश्चात् श्रीकृष्ण के प्रति जो संदेश भेजते हैं वह अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। श्रीकृष्ण के अभाव में गोपियाँ जलरहित मछली, चंद्ररहित रात्रि, दीपक-रहित मंदिर और भर्तृरहित भामिनी के समान हैं :-

"जल बिना जेहेवी मछली, चंद्र बिना जेम रात रे,
दीपक बिना जेम मोटा मंदिर, भामिनी विण भरथार रे ।।"

(कडवुं ४१)

प्रचलित परम्परानुसार कवि सुन्दरसुत ने माहात्म्यवर्णन भी किया है। काव्यान्त में गोपियों के प्रेम की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि उनकी समता कोई नहीं कर सकता -

"सनाथ ओधव थयो ने, भ्रमरगीता पूरी थई,
सुन्दर सुत जेहे सर्वथा, गोपी समोवड़ को नहीं।"

(कडवुं ४२)

सम्पूर्ण रचना आद्यन्त भावात्मक और प्रवाहयुक्त है -

रघुनाथदास : (सं० १७७५ से १८७०) :

कवि रघुनाथदास अहमदाबाद स्थित गोमतीपुर के निवासी थे। श्री द्वारका-दास जी के महन्त गोस्वामी श्री व्रजभूषणलाल जी के ये शिष्य थे। उनके द्वारा रचित काव्यों का एक संग्रह उनके भाई के वंशज वैष्णव रणछोड़दास इच्छाराम ने 'रघुनाथ-काव्य' नाम से प्रकाशित किया है। उनकी भ्रमरगीत सम्बन्धी गरबियां बृहत् काव्यदोहन भाग ३ में प्रकाशित हुई हैं। इन गरबियों की एक हस्तलिखित प्रतिलिपि डा० मंजूलाल मजमुदार बड़ौदा के पास है। भाव और माधुर्यपूर्ण ये गरबियां वर्षों से गुजरात में

अनेक स्त्रियों की गु कंठहार बनी हुई हैं। प्रथम गरबी में सांध्य समय द्रुतगति से ब्रज की ओर आते हुए रथारूढ़ उद्धव जी का चित्रण है। नंद यशोदा द्वारा उनका अच्छा आदर सत्कार होता है। नंद उद्धव के वार्तालाप के समय बालकृष्ण की स्मृतियों से यशोदा का मातृ हृदय भाव-विभोर हो उठता है। दूसरे दिन नंद के द्वार पर रथ देखकर गोपियों को अक्रूर के पुन: आगमन का संदेह होता है। वही रथ और वे ही घोड़े देखकर उन्हें दृढ़ आशंका हो जाती है -

"अधमी अक्रूर फरी आव्यो हशे,
एज घोड़ा ने एज दीसे अश्वार जो।"
(गरबी १-५)

द्वितीय गरबी में गोपियां अपने प्रियतम के सखा उद्धव जी के सामने अपनी अंतर्वेदना प्रस्तुत करती हैं। वे सहजभाव से पूछती हैं कि प्रियतम उनके प्रति क्यों नाराज हुए हैं :-

"ओधव जी अम साथे रसियो रुठाणो,
रिसाया केम ? कहो ने दिल नी वात जो।"
(गरबी-२)

गोपियों को ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण ने उनके साथ वचनभंग किया है। उनके सभी वादे झूठे प्रतीत होते हैं। वे रोष में आकर उन्हें तस्कर तक कह डालती हैं। एक मामूली छोकरे की धूर्तता देखकर उन्हें आश्चर्य होता है -

"छोकरडां सरखे रे अमने केतयां छेतजी गयो, ए तस्कर नो शो तोल जो ?"
(गरबी-२)

भोजन बनाते समय श्रीकृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा में गोपियां भाव निमग्न हो जाती हैं। भोजन परोसते समय भी प्रियतम के आने की झलक उनके कानों पर पड़ती है। उनकी इस मनोदशा के कारण सास के मुख से उन्हें बहुत कुछ सुनना पड़ता है

"भणकारा वागे छे भोजन पीरसतां, जमण करीने जोइये हरि नी वाट जो
सासु जी पूछे रे वहु तमे सांभलो एसोई करतां आवडो शो उपचार जो।"
(गरबी-२)

गोपियों को ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण ने प्रीति क्या की प्राणों को भी छीन लिया है। उन्होंने हमारे हृदय पर आघात किया है, मोह के बाण चलाये हैं। मोहन के लिए हमने जाति और कुल का त्याग किया किन्तु उन्होंने फिर भी निर्ममता के साथ हमारा त्याग किया। उनके मन में अतीत की लीलाओं के अनेक चित्र बार बार उभरते रहते हैं। यमुना के तट पर पानी भरते समय कन्हैया द्वारा झूठे झगड़े करना, नंगे बदन से आंगन में खेलना, लुक छिपकर दही खाना आदि संस्मरणों से वे प्रेम विभोर हो उठती हैं। चतुर्थ गरबी में भी गोपियों का दर्दपूर्ण अंतनाद मुखरित हुआ है। वे उद्धव जी से हृदय खोलकर श्रीकृष्ण को संदेश सुनाने के लिए कहती हैं -

"ओधव जी ! वे संदेशो कहे जो श्याम ने,
मारा मन जो, मूकी मन नो मेल जो।"

(गरबी-४)

प्रेम की रीति अनोखी होती है। गोपियों की स्थिति "वारि पीकर पूछता है घर सदा" जैसी है। उन्हें अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के स्वभाव का परिज्ञान नहीं था। उन्हें इस बात का दु:ख है कि प्रियतम ने उनका साथ क्यों छोड़ दिया।

अंतिम गरबी में गोपियों ने योगमार्ग की अवहेलना द्वारा उद्धव जी के ज्ञानमार्ग का प्रतिकार किया है। उनके अभिप्राय में योग की साधना अबलाओं के लिए नहीं हो सकती। जबकि उनके हृदयों मे विरहाग्नि की ज्वालाएं प्रज्ज्वलित हो रही हैं, उस समय योग का संदेश सुनाना जले पर नमक छिड़कने के समान है -

"संदेशो लाव्यो रे भूंडा जोगनो, नथी समातो दाझ्या उपर डाम जो।

(गरबी-५)

उनका यह अटूट विश्वास है कि पूर्ण प्रीति के बिना ईश्वर की प्रीति नहीं हो सकती। ज्ञानमार्ग में देहदमन के द्वारा सु० दु:ख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता-

"पूरण प्रीति बिना तो प्रभु जी नहीं मले,
देह दमन मां दु:खडां बारे मास जो।"

(गरबी-५)

उद्धव जी की ज्ञान गठरी से गोपियां प्रभावित नहीं होतीं। वे अपने हृदयस्थ भावों को अधरों पर लाकर अपने प्रियतम कृष्ण के प्रति प्रेम संदेश भेजती है -

"रघुनाथ ना स्वामी ने कहे जो एटलुं; हेत हतुं ते आव्युं हैयानुं होठ जो ।"

(गरबी-५)

रघुनाथदास ने गोपी हृदय के मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति सरस और सुन्दर भाषा में की है । गीति-काव्य की सभी विशेषतायें इन गरबियों में परिलक्षित होती हैं । भाव और कलापक्ष की दृष्टि से भी ये उत्कृष्ट सिद्ध होती हैं ।

कल्याण :

प्रस्तुत कवि द्वारा रचित 'ओधव जी नी गरबी' संवत् १८३६ में लिखित एक हस्तलिखित प्रतिलिपि से लेकर डा० चिमनलाल वैद्य ने 'भ्रमरगीताओं' में प्रकाशित की है । इस प्रतिलिपि के आधार पर यह सहज ही कहा जा सकता है कि कवि का आविर्भाव सं० १८३६ के पूर्व किसी समय हुआ होगा । उनके द्वारा रचित अन्य काव्य उपलब्ध नहीं होते ।

कवि ने अपने संक्षिप्त भ्रमरगीत काव्य का प्रारंभ उद्धव जी के प्रति प्रेम विह्वलता गोपियों के अनुरोध द्वारा किया है । उनके हृदय में अपने प्रियतम से मिलने की तीव्र आकांक्षा है । वे निरन्तर आंसू बरसाती रहती हैं । वियोगाग्नि में जल-जलकर उनके शरीर निष्प्राण हो गये हैं -

"हवे माहारी देहलड़ी पड़ती नथी रे, जीवलड़ो शा माटे नव जाय ।"

(पद ५)

विरहिणी गोपियां विरह के अपार कष्ट को सहकर अब जीवित रहना नहीं चाहतीं । बालक कृष्ण के खिलौने, पीताम्बरादि को देखकर उनके तन मन में आग लग जाती है । श्रीकृष्ण के पदचिन्ह देखकर भावातिरेक के कारण वे मूर्च्छित हो जाती हैं । यमुना तट पर जब जल भरने जाती हैं तब वहां नन्दलाल को न देखकर उनके मन में असह्य पीड़ा का उद्रेक होता है :-

"जमुना जल भरवाने जइयें छिपे रे, तीरे न मले नंद जी नो लाल ।

(पद ६)

उद्धव जी द्वारा दिया गया ज्ञान का परामर्श उनको लेशमात्र नहीं भाता । अपना ज्ञानमार्ग गठरी में अच्छी तरह से बांधकर कुब्जा के पास ले जाने के लिए कहती हैं -

"जतन करी ने जुगते जालवजो रे, घ्वेड़जो कुब्जा बेठी तांह ।"

(पद १४)

प्रियतम के अभाव में उनके मन पर उदासी छाई रहती है । सारा संसार उन्हें सूना-सा प्रतीत होता है । उनके मन में आशा और निराशा के भाव परिवर्तित होते रहते हैं । वे उद्धव जी से मथुरा लौटकर प्रियतम श्रीकृष्ण को गोकुल भेजने का बार-बार अनुरोध करती हैं -

"वात कही ते विसारो रखे रे तमे तो पूरण को जी प्राण,
मलवा गोकुल जो महाराज ने रे गरवी गाम दास कल्याण ।"

(पद १४)

गोविन्दराम :

कवि गोविन्दराम द्वारा रचित संक्षिप्त भ्रमरगीता 'अनुग्रह' मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुई है ।[१] विद्यासभा अहमदाबाद के संग्रहालय में संग्रहीत इस हस्तलिखित प्रतिलिपि का नं० १०८६ है, जिसकी लेखन तिथि सं० १८५७ श्रावण शुक्ला चतुर्थी है ।

काव्यारंभ में श्रीकृष्ण की वंदना की गई है । तदनन्तर दासी कुब्जा को महारानी बनाने की उनकी निराली रीति के प्रति सूक्ष्म व्यंग्य किया गया है -

"अकल गति मारा नाथनी रे, कोई ए नव जाणी ;
कुब्जा दासी कंसनी रे, कीधी महाराणी ।"

(पद २)

उसके पश्चात् उद्धव के गोकुलागमन का वर्णन है । गोविन्दराम के उद्धव लिखित संदेश लेकर गोकुल आते हैं -

"एक समे उद्धव जी रे, गोकुल मांहे आव्या ;
नंद तणो घेर उतर्या रे, हरिनो कागल लाव्या ।"

(पद २)

१- 'अनुग्रह' मासिक पत्रिका-वर्ष ११ अंक-८, पृष्ठ-२०

यशोदा श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं के वर्णन के पश्चात् अत्यन्त भोले भाव से अपने प्यारे पुत्र के दर्शन की कामना करती हैं । वे इस बार उन्हें कोई कार्य नहीं सौंपने का निर्णय करती हैं -

"उद्धव । केहेजो कृष्ण ने रे, आवे एक बार,
काम एने नहि दऊं रे, कहेजो निरधार ।"

(पद १८)

दूसरे दिन गोपियों की जब उद्धव जी से मुलाकात होती है तब वे अपने विरह की व्यथा का वर्णन उनके सामने करती हैं । बीच-बीच में श्रीकृष्ण के प्रवंचक स्वभाव को लेकर इन्होंने व्यंग्य भी किए हैं । बचपन की प्रीति का विस्मरण करने वाले और राधा को छोड़कर दासी कुब्जा का उद्धार करने वाले कृष्ण को वे जली कटी सुनाती हैं -

"बालपणा नी प्रीतड़ी रे, हरि पूरी विसारी,
राधा सखी परहरी रे, कुब्जा ने ओधारी ।"

(पद ३६)

श्रीकृष्ण की गोकुल लीलाओं का भी गोपियों ने मधुर स्मृतियों के रूप में स्मरण किया है । बीच-बीच में उन्होंने प्रियतम के प्रति जो व्यंग्य बचन कहे हैं वे इस रचना को उपालंभ काव्य सिद्ध करते हैं । अन्य भ्रमरगीताओं की भांति प्रस्तुत भ्रमरगीता में भी माहात्म्य वर्णन मिलता है । कवि ने इस भ्रमरगीता के पाठ या श्रवण द्वारा हरि के शुभ चरणों में आश्रय प्राप्ति का विधान किया है -

"भ्रमरगीता गाइ ने,सांभले नरनारी,हरि चरण ते पामशे रे,सदा शुभकारी ।"

(पद ५१)

रत्नो भावसार :

कवि रत्नेश्वर भावसार खेड़ा के निवासी थे । ऐसा कहा जाता है कि जैन मुनि उदयरत्न जी से इन्होंने काव्यकला की दीक्षा ग्रहण की थी । इनके द्वारा लिखित 'कृष्ण विरह' के द्वादश मास साहित्य में अद्वितीय हैं । रत्नकणिका के समान ये द्वादश मास अपनी चित्रोपमता एवं माधुर्यपूर्ण भावोद्बोधन को लेकर मध्यकालीन गुजराती साहित्य के रम्यतम गीतिकाव्यों में शीर्ष स्थान के अधिकारी हैं।[१] 'विरहिणी

१- बृहत् काव्य दोहन ग्रंथ १ हच्छाराम सूर्यराम देसाई सातवां संशोधित संस्करण

राधा प्रकृति के परिवर्तित रूप में प्रतिमास कृष्ण विरह की व्यथा का किस प्रकार मार्मिक अनुभव करती है उसका वर्णन ललित, मधुर भावार्द्र शब्दों द्वारा प्रस्तुत करने में कवि को अद्भुत सफलता मिली है। 'वृहत् काव्य दोहन' ने उचित ही कहा है कि रत्नेश्वर की कविता रत्नों के समान चमक रही है।[१]

बारहमासा काव्य का प्रारंभ कार्तिक मास से किया गया है। गुजरात में नूतन वर्ष का प्रारंभ इसी मास से माना जाता है। विरहिणी व्रजांगनाएं अपनी विरहव्यथा का संदेश उद्धव जी द्वारा अपने प्रियतम श्रीकृष्ण तक पहुंचाना चाहती हैं। वे प्रियतम के वियोग में हाथ मलकर रह गई हैं। प्रियतम की प्रतीक्षा में दिन और मास गिन-गिनकर थक चुकी हैं। मात्र मिलन की मधुर अभिलाषा को लेकर अद्यावधि जीवित रह सकी हैं। उनकी आंखों से आंसुओं की अनवरत धारा उमड़ती रहती है। प्रियतम का स्वयं न आकर उद्धव जी के साथ योगमार्ग का संदेश भेजना उन्हें अत्यन्त अखरता है -

"प्रथम तो मधुकर मोकल्यो, व्हालो काव्यो छे जोग ;
आपण अबलाने ए घटे, जो जो करम ना योग ।।"

सौभाग्य के अभाव में प्रियतम का संयोग क्योंकर प्राप्त हो सकता है ? गोपियां अपने भाग्य को बार-बार कोसती रहती हैं। कुब्जा के प्रति किया गया मार्मिक व्यंग्य भी द्रष्टव्य है। कुब्जा जैसी कामिनी को पाकर कृष्ण धन्य हो गये हैं। काले कृष्ण और कुब्जा की जोड़ी बड़ी सुन्दर लगती होगी :-

"कुब्जा सरखी कामिनी, आवी हरिने रे हाथ ।
आप काला ने ए कूबड़ी, भली भजि छे रे भात ।।"

गोपांगनाएं स्पष्ट शब्दों में कहती हैं कि एक तो विरह का दुःख है ही, कुब्जा को लेकर एक अन्य शूल हृदय में भोंकने लगा है। ऐसी स्थिति में निर्गुण का संदेश जले हुए पर नमक छिड़कने के समान है -

---

१- बृहत् काव्य दोहन : ग्रंथ १ : भूमिका : पृष्ठ ६४

`एक दु:खे अमो दाझिए, बीजुं कुब्जा नुं शूल ।
निर्गुण जोग वली लखे, दाझ्या ऊपर लूण ।।`

इस प्रकार बारहमासा के रूप में लिखित संक्षिप्त भ्रमरगीत में उपालंभ प्रधानता के दर्शन सहज ही होते हैं ।

प्रीतमदास (सं० १७७४ से १८५४) :

अट्ठारहवीं शताब्दी के भूषण रूप कवि प्रीतमदास का जन्म सं० १७७४ में अहमदाबाद के निकट बावला नामक गांव में ब्रह्मभट्ट जाति में हुआ था । बाल्यावस्था में ही वे चक्षुहीन हो गये थे । रामानंदी सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् ये अधिकांशत: खेड़ा जिले के संधेसर नामक गांव में स्थायी निवास करते थे । उनके कई काव्य ग्रंथ `सस्तुं साहित्य वर्धक` प्रकाशन संस्था की ओर से `प्रीतमवाणी` नाम से प्रकाशित हुए हैं । उन्होंने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के पद प्रचुर मात्रा में लिखे हैं । उनके मार्मिक एवं भक्तिपूर्ण पदों के आधार पर उन्हें वेदान्त, पुराण, एवं भागवत जैसे धर्मग्रंथों का अच्छा परिचय रहा होगा ऐसा कहा जा सकता है ।

प्रीतमदास प्रणीत बीस विश्रामयुक्त `भ्रमरगीता` या `सरसगीता` एक महत्त्वपूर्ण रचना है । श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गये उद्धव जी का नंद, यशोदा एवं व्रजांगनाओं को ज्ञानोपदेश द्वारा सांत्वना प्रदान करना, गोपियों द्वारा अपनी विरह वेदना का वर्णन, श्रीकृष्ण की गोकुल लीलाओं के संस्मरण तथा प्रेमलक्षणा भक्तियुक्त उनके उत्तर प्रत्युत्तर काव्य के प्रमुख विषय हैं । प्रथम विश्राम में श्रीकृष्ण द्वारा उद्धव जी को व्रज में भेजने का भागवतानुसारी वर्णन है । द्वितीय विश्राम में रथारूढ़ उद्धव जी के संध्या समय व्रजागमन का वर्णन है । नंद एवं यशोदा द्वारा श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का संक्षिप्त वर्णन भी इसी विश्राम में मिलता है । तृतीय विश्राम में विरहिणी गोपियों के विरह की दारुण दशा का मार्मिक चित्रण हुआ है । वे निरन्तर कृष्ण-कृष्ण पुकारती रहती हैं । अपने प्रियतम के सखा उद्धव जी का स्वागत करते हुए गोपियां कहती हैं कि मधुपुर के लोग ठग होते हैं । वे मुख से मधुर शब्द बोलते हैं किन्तु उनके मन में मलिनता होती है -

"लोक तो लांठ छे मधुपुर गामना, मुखे तो मीठुं बोले, मेल घणो मन मां ।"

(विश्राम ३-१६)

गोपियों के इन शब्दों का मर्म न समझते हुए उद्धव जी ज्ञानोपदेश द्वारा उनके हृदय के घावों पर नमक छिड़कने का प्रयत्न करते हैं । उन्हें उद्धव जी का यह ज्ञानोपदेश अखरता है और वे रोषपूर्वक कहती हैं कि अबलाएं यौगिक क्रियाएं आत्सात् नहीं कर सकतीं । अपना योग आप अपने पास ही रखिए -

"अमो ते अबला जन, एवुं केम आवड़े ? तमे जो जोग कह्यो,तमारा कामनो ।"

(विश्राम ५,१-२)

इस पर भी उद्धव जी ज्ञानोपदेश देते रहते हैं और विविध दृष्टान्तों द्वारा श्रीकृष्ण के ब्रह्मस्वरूप पर प्रकाश डालते हैं । ज्ञानोपदेश के प्रतिकार में गोपियां विविध तर्क-वितर्क प्रस्तुत करते हुए कहती हैं कि यदि ईश्वर सर्व-व्यापक है तो हम गोवर्धन पर्वत क्यों नहीं उठा सकतीं -

"अमो तो मानीए ज्यारे ,पराक्रम मालीए।
तन मां हरि होए, तो गिरि उठावीए ।।"

(विश्राम ७-५)

गोपियां चातक एवं मीन के उदाहरणों द्वारा अपना कृष्ण के प्रति आकर्षण प्रस्तुत करती हैं । वे उद्धव जी से कहती हैं कि प्रेम की पीर को वही समझ सकता है जिसने उसका अनुभव किया हो -

"उद्धव जी प्रेम नी पीड़ा, हशे ते जाणशे
बीत्या विना वेदना, कोई केम परणावशे ?

(विश्राम ७-१४)

आठवें विश्राम में कुब्जा के प्रति किया गया व्यंग्य द्रष्टव्य है । गोपियां श्रीहरि के गोकुल में उन्हें राज्य मिला है और कंस की दासी कुब्जा का संग प्राप्त हुआ है । भला वे फिर क्यों आयेंगे -

"हवे हरि शींद आवे ? सगपण शुं रह्यु ? मधुपुर राज मल्युं,व्रजकेरी भयुं ।
वली विशेष मली, कंस दासी कुबज्या,तेहनो संग कर्यो,पछा जुवमां भज्या ।"

(विश्राम ८,३-४)

आठवें विश्राम के पश्चात् गोपियों ने श्रीकृष्ण की विभिन्न गोकुल लीलाओं का वर्णन भावार्द्र होकर किया है। ग्यारहवें विश्राम में कालीय नाग दमन लीला का वर्णन सुन्दर बन पड़ा है। चौदहवें विश्राम में कृष्णा-पत्नी विधृता का वर्णन हृदय स्पर्शिता से युक्त है। पंद्रहवें विश्राम में मुरली माधुरी और रासलीला का वर्णन है। विविध लीलाओं के वर्णन के पश्चात् गोपियां स्वाभाविक ही उद्धव जी से पूछती हैं कि ऐसे मनमोहक श्रीकृष्ण के रूप को हम कैसे भूल सकती हैं। उनके वियोग में प्रत्येक क्षण एक युग के समान है -

"वियोग रोग तणी, पीड़ा बहु थाय छे :
प्रभु बिना पलक ते तो, कहें जुग थाय छे।"
(विश्राम १७,१-२)

भ्रमर के माध्यम से काले रंग के प्रति भी व्यंग्य किया गया है। काले रंग की संगति से दुःख प्राप्त होता है -

"काला ने संग कर्यो ; दुःख पाम्या घणुं ;
काला नुं वीस वले नहि, कारण कालातणुं।"
(विश्राम १-१२)

अपने ~~विह्वल~~ अंतर की वेदना का संदेश गोपियों ने श्रीकृष्ण तक पहुंचाने का उद्धव जी से अनुरोध किया है। श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए उनके नयन आतुर हैं। उन्हें हरि के सिवाय अन्य कोई वस्तु प्रिय नहीं -

"तमारुं रूप जोवा, नेण तलसी रह्यां, जिम्याये जश गाइने, घणुं वेला थयां।"
(विश्राम १७-१५)

उद्धव जी गोपियों से श्रीकृष्ण के रसेश रूप का मार्ग पाकर कृतज्ञता भाव प्रकट करते हैं। गोपियां उन्हें श्रीकृष्ण के साथ गोकुल आने का निमंत्रण देकर बिदा करती हैं -

"पछे व्रजनार वदे, उद्धव जी आवजो ;एक वार अलबेला ने, तेड़ी ने लावजो ।।"
(विश्राम १८)

'सरस-गीता' के अंत में कवि ~~अवंठ~~ प्रीतम ने भी माहात्म्य वर्णन किया है। गोपी-उद्धव ~~के~~ संवाद के पठन या श्रवण द्वारा हरि का निवास हृदय में होता है

और प्रीति दृढ़ होती है -

"बले हरि चिरदे तेने, गोपी संवाद थी ;
कर जोड़ी प्रीतम कहे, गुरु प्रसाद थी ।"

(विश्राम २०-८)

"सरसगीता" आद्यंत सरल और सुबोध भाषा में लिखी गई है । सं० १८३१ में इस काव्य के प्रणयन का उल्लेख काव्यान्त में स्वयं कवि ने किया है ।

कवि प्रीतमदास के कतिपय ऐसे कुटकर पद मिलते हैं जिनकी परिगणना भ्रमरगीत काव्य परम्परा के अंतर्गत की जा सकती है । 'गोपीजन ना रे प्राण ते तो प्रभु नी पासे'[१] जैसे पद इसके उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं । प्रेम की पीड़ा को प्रेमीजन ही समझ सकते हैं । प्रसव की वेदना को बंध्या नारी नहीं जान पाती :-

"प्रेमनी वातो ते तो प्रेमीजन जाणे, वंझा नव जाणे कांई प्रसव नी पीड़ा ।"[२]

प्रेममार्ग और ज्ञानमार्ग का भेद समझाते हुए कवि ने कहा है कि प्रेममार्ग आम्रफल के समान है जबकि ज्ञानमार्ग करील की कंटीली झाड़ी के समान है -

"श्याम स्वरूप विना शुं थाय साधन, अंब तजी ने कोण सेवे करीर ।३

सूर की 'जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यौ क्यों करील फल खावै' से साम्य द्रष्टव्य है । गोपियों के हृदय में स्थान नहीं । उनकी आंखों पर नंदकिशोर की मूर्ति सदैव छाई रहती है । जिस प्रकार केसरी भूखा होने पर भी घास नहीं खाता ठीक उसी प्रकार गोपियां प्रेमभक्ति को छोड़कर ज्ञानमार्ग का अनुसरण करना नहीं चाहतीं । उद्धव जी के ज्ञानपूर्ण वचन गोपियों के हृदय में इस प्रकार आघात पहुंचाते हैं मानो किसी ने धनुष द्वारा तीर चलाये हों ।

१- प्रीतमदास नी वाणी : सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय,
प्रकाशन : सं० २०१८ पृष्ठ १२१

२- वही, पृष्ठ १२२

३- प्रीतमदास की वाणी : सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय
प्रकाशन सं० २०१८ -पृष्ठ १२१

मुक्तानंद (सं० १८१७ से १८८६ ई० :

संत कवि मुक्तानन्द स्वामीनारायण सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी सहजानंद जी के शिष्य थे। पूर्वाश्रम में उनका नाम मुकुन्ददास था। धांगध्रा के वणिक परिवार में उत्पन्न इस बालक ने अल्पायु में ही पूर्व जन्म के संस्कारों को लेकर तीव्र वैराग्य का अनुभव किया और तेरह वर्ष की उम्र में गृहत्याग दिया। श्रीसहजानन्द स्वामी जी की प्रेरणा से उन्होंने बड़ी उम्र में ही अध्ययन कर विज्ञता संपादित की थी। मृत्यु के अगले दिन तक कलम की निरन्तर साधना के द्वारा उन्होंने 'सतीगीता', 'शिक्षावली', 'धर्मामृत', 'प्रेमलीला', 'रामलीला' एवं श्रृंगार के हजारों कुटकर पदों की रचना की। सरल और विनीत प्रकृति के इस साधु कवि की रचना अपनी ऋजुता और सरलता को लेकर सम्प्रदाय एवं जन-साधारण में प्रिय सिद्ध हुई है।

'मुकुन्द बावनी', 'सतीगीता' जैसी मुख्य कृतियों में उनकी कवित्व शक्ति की विशेष प्रतीति कराने वाली कृति 'उद्धवगीता' है। इसमें राम द्वारा सीता के निर्वासन की तथा गोपियों के कृष्ण-विरह की कथा के निरूपण द्वारा करुण एवं भक्तिरस की सुन्दर निष्पत्ति हुई है।[1] सीता त्याग का प्रसंग अत्यन्त मार्मिक शैली में वर्णित है।[2] नौ हजार पदों के अतिरिक्त उनके अन्य भी अनेक ग्रंथ हैं किन्तु इनमें सर्वाधिक सुन्दर 'उद्धवगीता' है।[3] ज्ञान मुक्तानंद स्वामी का प्रिय विषय था। वे ज्ञान को नित्य समझकर उसकी ओर पूज्य भाव से देखते थे। परिणामस्वरूप उनकी रचनाओं में ज्ञान-चर्चा का आधिक्य है। उद्धवगीता एक बृहदाकार रचना है जिसमें १०८ कड़वे और २७ पद हैं। प्रारंभ के ९ कड़वों में नंद उद्धव संवाद तथा १० से २० तक पूतना वध से लेकर वैकुंठ दर्शन तक की लीलाओं का गोपियों ने वर्णन किया है। २१ से २३ तक भ्रमर के प्रति उपालंभ दिये गये हैं। २५ से ४७ तक के कड़वों में बालि-वध, वामन-चरित्र और सीतात्याग आदि

१- गुजराती साहित्य (मध्यकालीन) अनंतराय रावल १९५८ ई० पृ० २०६

२- गुजराती साहित्य नी विकास रेखा : धीरुभाई ठाकर (तृतीय संस्करण) पृ०९०

३- गुजराती साहित्य ना मार्ग सूचक स्तंभो, कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी, पृ० १२८ (संयुक्त आवृति १९५८ ई०)

प्रसंगों का विस्तृत वर्णन है । ४६ से ५१ तक उद्धव जी का ज्ञान विषयक उपदेश है । ५३ से ७७ तक रासलीला का उत्कृष्ट वर्णन है । ८० एवं उसके बाद के कुछ कड़वों में विरहिणी राधा के असह्य विरह एवं मूर्च्छित होने का वर्णन है । राधा विरह के बाद के लगभग २० कड़वों में विरहिणी गोपियों के हृदय की व्यथा का मार्मिक वर्णन मिलता है ।

स्वयं कवि ने 'उद्धवगीता' को हरिभक्ति का शृंगार और सद्ग्रंथों का सारांश कहा है । काव्यारंभ "श्री राधावर रसिक प्रभु" की वन्दना के साथ किया है । श्रीकृष्ण के परम सखा उद्धव जी का ब्रजागमन, नंद एवं यशोदा के साथ वार्तालाप आदि का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है । गोपियां उद्धव जी का हृदय से स्वागत करती हैं और श्रीकृष्ण के स्वार्थ पूर्ण प्रेम सम्बन्ध को लक्ष्य कर कहती हैं कि उन्होंने हमें प्रेम के झूठे रूप में उतारकर रस्सी काट डाली है -

"पहेलां सुखडां अलौकिक आपी रे, पछी रूप लीधो व्रत कापी रे ।"

(कड़वुं १३)

इक्कीसवें कड़वे में भ्रमर प्रवेश का वर्णन है । गोपियों ने भ्रमर के माध्यम से कृष्ण के प्रति सुन्दर उपालंभ दिये हैं । जिस प्रकार भ्रमर कमल पर बैठकर रस मकरन्द पान करके उसका त्याग कर देता है वैसी प्रकार कृष्ण भी उन्हें बेहाल बनाकर मथुरा चले गये हैं । उन्होंने प्रेम तो कर लिया किन्तु अब उन्हें पश्चाताप होता है । जिस प्रकार प्यासा पानी पीकर घर पूछता है वैसी ही स्थिति उनकी है -

"पाणी पीने अमे घर पूछ्युं, हवे एनो शो उपाय रे ।"

(पद ६)

गोपियों ने भी श्रीकृष्ण की विभिन्न गोकुल-लीलाओं के उल्लेख द्वारा अपने दृढ़ीभूत प्रत्यक्ष प्रेम की ओर संकेत किया है । राम द्वारा सीता के परित्याग का वर्णन अत्यंत विस्तार के साथ करके परोक्ष रूप से श्रीकृष्ण के प्रति उपालंभ दिया गया है । रामावतार में भी भगवान ने निरपराध सीता को कठोर दण्ड दिया था । अत: कृष्णावतार में निरीह गोपियों के साथ जो निष्ठुर व्यवहार किया है उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं -

"सीता सरखी सुंदरी तेने मुकावी वनवास, मुक्तानंद ना नाथनो हवे थाय केम विश्वास ।" (कडवुं ४६)

अनेक उदाहरणों द्वारा गोपियों ने श्रीकृष्ण के प्रवंचक रूप को प्रत्यक्ष प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। उन्हें व्याध से भी अधिक निर्दय और निष्ठुर कहा है। गोपियां अपार रुदन के साथ अपने हृदय की व्यथा का वर्णन उद्धव जी के सामने करती हैं। इस पर भी वे उन्हें ज्ञानोपदेश देते हैं। उनका यह प्रयत्न जले हुए पर नमक छिड़कने के समान है। गोपियों को उनका यह ज्ञानोपदेश अखरता है। उन्हें तो श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष रूप के प्रति ही अनन्य आकर्षण है।

कवि मुक्तानंद ने 'उद्धवगीता' में उत्कृष्ट भावयुक्त रास वर्णन भी किया है। श्रीकृष्ण की मोहिनी मुरली से विमुग्ध होकर गोपियां उनके पास दौड़ आती हैं। दो गोपियों के बीच में एक कृष्ण एक दूसरे की भुजा पकड़कर रास खेलते हैं। इस प्रकार प्रत्येक गोपी श्रीकृष्ण का सामीप्य प्राप्त करती है। गोपियों ने इस रसिक रासलीला के रम्य संस्मरणों का वर्णन उद्धव जी के सामने आनंद मिश्रित व्यथा के साथ किया है। मिलन के मधुर संस्मरण वियोग की इस विकट वेला में सखा याद आते हैं। प्रियतम के वियोग में वे तीव्र वेदना का अनुभव करती हैं और निरन्तर कृष्ण-कृष्ण गुञ्जरित पुकारती रहती हैं।

'उद्धवगीता' में राधा के विरह का भी हृदयस्पर्शी वर्णन मिलता है। अन्य प्रमरगीताओं की अपेक्षा कवि मुक्तानंद की यह विशेषता है कि उन्होंने राधा के विरह का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। प्रियतम की प्रतीक्षा में निमग्न वे प्राय: मूर्च्छित ही रहती हैं। प्रियतम के अभाव में उन्हें पुष्पों की शैय्या भी बाणों की शैय्या के समान प्रतीत होती है। गोपियां उद्धव जी को राधा के पास ले जाती हैं। वे विरहिणी राधा को भी योगमार्ग का उपदेश देने लगते हैं किन्तु उनके लिए तो कृष्ण के अतिरिक्त सभी बातें अप्रिय हैं। वे अहर्निश प्रिय-विरह को लेकर तीव्र वेदना का अनुभव करती हैं और उद्धव जी से जानना चाहती हैं कि सुन्दर श्याम मनमोहन कृष्ण कब गोकुल आयेंगे -

"कोने उद्धव सुन्दर श्याम, को दी आवशे गोकुल गाम,
त्रेहेने तापे तपी व्रजनारी, क्यारे ठारशे कुंज विहारी ।"
(कडवुं ४२)

'उद्धवगीता' में विरहिणी गोपियों की दीनदशा का वर्णन अत्यंत विस्तार के साथ किया गया है । कवि ने अनेक प्रकार से विरह की विभिन्न दशाओं का चित्रण किया है । प्रियतम के अभाव में उन्हें वक्षस्थल की मालाएं भाररूप प्रतीत होती हैं । चन्दन का लेप विष के समान लगता है । सौरभयुक्त पुष्प दु:खदायक सिद्ध हुए हैं । शीतल हवा अग्नि के समान जलाने वाली लगती है । मधुमास में अनंग अमोघ बाण चलाता है । हरि के अभाव में उनका हृदय कांप उठता है । वे आंखें मूंदकर प्रियतम का ध्यान करती हैं । श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन के अभाव में अत्यन्त व्याकुल रहती हैं । मेघघटा में उन्हें श्रीकृष्ण की प्रतिमूर्ति दीख पड़ती है ।

गोपियां प्रेमभक्ति की अनुयायिनी हैं । उनकी इस प्रेमपूर्ण भक्ति के सामने उद्धव जी अपनी पराजय स्वीकार कर लेते हैं । वे मुक्तकंठ से गोपियों की प्रशंसा करते हैं और मथुरा लौटने की तैयारी करते हैं । व्रजवासी नरनारी, बालक-वृद्ध सभी उन्हें भावभरी विदाई देते हैं । यहां व्रजवासियों द्वारा भेंट आदि भेजने का वर्णन नहीं मिलता। संभव है कवि ने इस प्रसंग को अनावश्यक समझकर या विस्तारभय से स्थान न दिया हो । व्रजवासियों को बार-बार वंदन करके उद्धव जी मथुरा आते हैं । वे श्रीकृष्ण के सम्मुख गोपियों के प्रेममार्ग का मर्मस्पर्शी वर्णन करते हैं और उनकी मुक्त-हृदय से प्रशंसा करते हैं । काव्यान्त में कवि मुक्तानंद ने माहात्म्य वर्णन भी किया है ।

ब्रह्मानन्द (सं० १८२८ से १८८८) :

ब्रह्मानंद स्वामी का जन्म चारण परिवार में डूंगरपुर के निकट खाण गांव में हुआ था । पूर्वाश्रम में उनका नाम लाडू बारोट था । उनके पिता शंभूदान का चारण कवि के नाते उदयपुर के राज्य दरबार से अच्छा सम्पर्क था । अपने पिता के साथ युवक लाडू बारोट को भी राज दरबार में जाने का अवसर मिलता था । उनके स्वाभाविक तीव्र बुद्धि युक्त दोहों और छंदों का राणा पर अच्छा प्रभाव पड़ा और उन्होंने इस युवक को कच्छ की पाठशाला में भेजने के लिए कहा । राणा के अनुरोध पर पिता ने

उन्हें काव्यकला का अध्ययन करने के लिए कच्छ स्थित पाठशाला में भेजा । इस पाठशाला में ब्रजभाषा एवं पिंगलशास्त्र का अध्यापन होता था । ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा, वंशपरम्परानुगत संस्कार और अध्ययन एवं अध्यवसाय को लेकर लाडू बारोट ने काव्य-रचना के क्षेत्र में अल्प समय में ही अच्छी ख्याति अर्जित की । राजस्थान के जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर एवं सौराष्ट्र के जूनागढ़, जामनगर, भावनगर आदि राज्यों के दरबारों में उनका अच्छा सम्मान होने लगा । भ्रमण करते-करते सौराष्ट्र स्थित भुजनगर में श्री जी स्वामी सहजानंद जी के प्रति प्रथम दर्शन से ही उनके मन में आकर्षण पैदा हुआ और उनके उपदेश से प्रभावित होकर वैभवपूर्ण जीवन का परित्याग कर उनसे दीक्षा ग्रहण की । उन्हें पुनः संसारी बनाने का कुटुम्बीजनों ने प्रयत्न किया, किन्तु वे अपने सिद्धान्त पर अविचल रहे । सहजानंद स्वामी के ये इतने प्रिय थे कि वे उन्हें प्रेम से सखा कहकर पुकारते थे ।

भक्तवीर कवि ब्रह्मानंद रचित ८००० स्फुट बोध प्रधान, पद चारणी, राजस्थानी, गुजराती एवं हिन्दी भाषा में मिलते हैं । "शब्द एवं शब्द रचना की इतनी सूक्ष्म परख के दर्शन इनके पदों में होते हैं कि पाठक के मन पर अवर्णनीय आनंद एवं शान्ति के भाव छा जाते हैं ।[१] सहज उपदेश इस साधु कवि का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय था । उनके अधिकांश पदों में ज्ञान, वैराग्य, एवं उत्कट भक्ति-भाव के दर्शन होते हैं । उनकी वाणी में करुणा एवं भावावेश का आधिक्य है । उनके अनेक पद हृदयस्पर्शी होने के कारण पर्याप्त लोकप्रिय सिद्ध हुए हैं । अपने पदों से उन्होंने जूनागढ़ के नवाब को प्रसन्न कर मुसलमानी राज्य की इस राजधानी में एक स्वामीनारायण मंदिर बनाने की अनुमति प्राप्त की ।[२] बड़ौदा नरेश श्री सयाजीराव गायकवाड़ भी उनका अच्छा आदर करते थे । उन्होंने राजस्थानी में 'लाडू' नाम से हिन्दी में 'अीरंग' के नाम से और गुजराती में 'ब्रह्मानन्द' के नाम से काव्य-सृजन किया है । श्री रंगदास के नाम से 'उपदेश चिन्तामणि', 'ब्रह्म विलास', 'छन्द रत्नावली' आदि ग्रंथ ब्रजभाषा में लिखे हैं । निश्चित संख्या में

१- गुजराती साहित्य ना मार्गसूचक स्तंभो : कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी, पृष्ठ -२१६

२- वही, पृष्ठ- २१६

पद लिखे बिना भोजन नहीं करने का एक प्रकार से उनका नित्य नियम बन गया था ।[१] बहुत बड़ी संख्या में पद लिखकर इस साधु कवि ने गुजराती साहित्य में उल्लेखनीय स्थान प्राप्त किया है ।

भ्रमरगीत काव्य परम्परा में इनके द्वारा रचित 'लीला वर्णन' एवं 'विरह-वर्णन' के कतिपय पद विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं । इन पदों में श्रीकृष्ण के मथुरागमन को लेकर व्रजवनिताओं को विरह का जो असह्य परिताप सहना पड़ा उसका मार्मिक वर्णन है । विरह के ये पद उपालंभ पूर्ण हैं । गोपी वनिताओं ने कृष्ण एवं कुब्जा के प्रति अनेक व्यंग्य बाण चलाये हैं । उद्धव जी को भी रोष में आकर कहीं-कहीं उलाहना दिया गया है । ब्रह्मानंद काव्य में संकलित २२४४ से २३४१ पदों में से अधिकांश पदों की परिगणना भ्रमरगीत काव्य-परम्परा के अंतर्गत की जा सकती है ।

'लीला वर्णन' में कई पद सुन्दर उपालंभ युक्त हैं । श्रीकृष्ण के कुब्जा के साथ व्याह को लक्ष्यकर गोपियां व्यंग्यभाव में कहती हैं कि कुब्जा का शारीरिक गठन अत्यंत आकर्षक है जो तीन जगह से टेढ़ा या वक्र है । उसका कुल भी अत्यंत ऊंचा है और वह पूर्ण पतिव्रता एवं गुणशीला है -

"अण वांके एनुं तनडुं वळ्युं रे, कुल पण एनुं बहु भारी ।
पतिव्रता सर्वे वाते पूरी रे, शील लक्षण गुण जारी ।"
(पद १३७१ ब्रह्मानंद काव्य पृष्ठ ३७३)

मथुरा से श्रीकृष्ण का अद्यावधि आगमन न पाकर गोपियां और उनमें भी राधा विशेष रूप से व्याकुल हैं । उनकी इस व्याकुलता का कवि ने हृदयस्पर्शी वर्णन किया है । वे अपने प्रियतम को कपटी और धोखेबाज कहती हैं । उनकी कथनी और करनी में कोई साम्य नहीं, उनके सभी वादे झूठे हैं कहकर उन्हें खूब फटकार सुनाती हैं । अपने

१- ब्रह्मानंद काव्य (द्वितीयावृत्ति सं० १९६९) संपादक : राव साहेब करमशी दाम जी तथा
मोतीलाल त्रिभोवनदास फौजदार, पृ० १९

अदम्य और अटल प्रेम का संदेश वे उद्धव जी को श्रीकृष्ण के पास ले जाने के लिए कहती हैं :-

"उधो इतनी कहीयो श्यामकुं ;
मथुरा जाय रहे मनमोहन, भूले गोकुल गाम कुं ।
हमकुं दाह दीयो उर प्रीतम, तुम पाये आराम कुं ।
पंथ निहार भई दृग पीरी, रहत तुम्हारे नाम कुं ।
ब्रह्मानंद कहे तुम बीन पीय, नहीं चाहत धन धामकुं ।

(पद २२८४ (राग सारंग) पृ० ६३३)

एक अन्य पद में गोपियां उद्धव जी से कहती हैं कि श्रीकृष्ण को एक ओर बुलाकर कहना कि आप मथुरा जाते समय सौगंध खाकर गये थे किन्तु अब कुब्जा के मोहपाश में बंधकर आपने हमें भुला दिया है -

"उधो कहीयो इतनी जाय के ।
एक ओर तेरे कहानकुं, कहीयो सबही बीधी सजाय के ।
पूरे दिवस करत हे प्रीतम, चरित्र तुम्हारे गाय के ।
चलनी वेर हमारे आगे, तुम गये ते संखाय के ।
ब्रह्मानन्द कहे सूध भूले, कुबजा में ललचाय के ।"

(पद २२८५ ब्र.का.)

गोपियों को ऐसा लगता है कि कुब्जा ने जादू द्वारा प्रियतम को वशकर हमसे छीन लिया है । कृष्ण उसके सामने दोनों हाथ जोड़कर ऐसे खड़े रहते हैं जैसे कोई बंदीजन हो -

"कुबजानी आगे रभा कर जोड़ी रहो छो ;
वहाला रे मूकी दीधुं केम मानने जी ।
प्रितडी लगाडी रे तमने एणीपरे राख्या ;
वहाला जेम राखे बंधीवान ने जी ।"

(पद २३०० ब्रह्मानन्द काव्य)

इन पदों के अतिरिक्त कवि ब्रह्मानन्द ने 'बारह मासा' वर्णन के पदों में भी विरहिणी गोपियों की विरह-व्यथा का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है ।[१]

१- ब्रह्मानंद काव्य (द्वितीयावृत्ति सं० १९६९) संपादक : रावसाहेब करमशी दामजी तथा मोतीलाल त्रिभोवन दास फौजदार पृ० ६४३

निष्कुलानन्द : (सं० १८२२ से १९०४) :

स्वामी निष्कुलानन्द का पूर्वाश्रम में लालजी नाम था । उनका जन्म सौराष्ट्र स्थित शेखपार नामक गांव के बढ़ई परिवार में हुआ था । उनके पिता का नाम रामभाई था । वे जन्मसिद्ध मुमुक्षु, विरक्त और सत्य-सेवा परायण थे। बाल्यावस्था से ही स्वधर्म के प्रति दृढ़ अभिरुचि, वैराग्य की तीव्रता, आत्मज्ञान की उत्कट इच्छा और परमेश्वर के प्रति अनन्य भक्ति-भाव के सहज दर्शन उनमें होते थे । श्री सहजानन्द स्वामी से दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने त्याग, वैराग्य, नि:स्पृहता, अपरिग्रहता आदि का साधुतायुक्त सहज, सरल भाषा में ज्ञानोपदेश देना प्रारंभ किया । उनके साहित्य का अधिकांश 'गुर्जर गिरा' में है । उनके काव्य का कुछ अंश हिन्दी में लिखा गया है । उन्होंने भक्त चिन्तामणि, हरिबाललीला, स्नेहगीता, पुरुषोत्तम प्रकाश, भक्तिनिधि, हृदय-प्रकाश, हरिस्मृति, अक्षर - चिन्तामणि आदि २३ से भी अधिक ग्रन्थों की रचना की है । भक्ति, ज्ञान और वैराग्य उनके काव्य के प्रमुख विषय हैं । ~~प्रमरगीत काव्य-परम्परा उनके काव्य के प्रमुख विषय हैं~~ । प्रमरगीत काव्य-परम्परा में उनके द्वारा रचित 'स्नेहगीता' की परिगणना की जा सकती है ।

स्नेहगीता अक्षरश: स्नेह की ही गीता है । स्नेह का ही दूसरा नाम प्रेम-भक्ति है । भगवान के प्रति कैसा स्नेह होना चाहिए यह दर्शाने की ईश्वर की इच्छा से ही स्वामी जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन किया है । स्नेहगीता की रचना ४४ कड़वों और ११ पदों में हुई है । 'ब्रजजन वल्लभ' की मंगलमूर्ति की आराधना के पश्चात् काव्यारंभ हुआ है । प्रथम कड़वे में ही इस साधु कवि ने स्नेह की सराहना की है और भक्ति के अभाव में ज्ञान को अपूर्ण कहा है । प्रेम के अभाव में भक्त हृदय शोभा नहीं देता । प्रेम से ही भक्ति और ज्ञान की पूर्णता सिद्ध होती है ।

गायें, गोपियां और ग्वालबालों के श्रीकृष्ण के प्रति स्नेह की तुलना कवि ने 'मयूर और मेघ', 'चातक और स्वाति नक्षत्र' आदि के साथ की है। जिस प्रकार अग्नि के सम्पर्क से मोम, मक्खन, और घी पिघल जाते हैं उसी प्रकार व्रजांगनाओं के हृदय श्रीकृष्ण के मिलन से अपनी सुध-बुध खोकर पिघल उठते थे। गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति इतना अदम्य स्नेह है कि उन्हें कृष्ण-कृष्ण रटते दिन-रात बीतने का पता तक नहीं चलता। वे उनके प्रेम में पागल, दीवानी और उन्मादिनी बन गई है -

"खातां पीतां बोलतां वली स्नेह मां शुद्ध बिसरी।
सूतां सूतां जागे फाबकी, उठे कृष्ण-कृष्ण मुखे करी ।।"
(कडवुं ३-४)

उनकी परवशता का वर्णन कवि ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में किया है। एक पल का विरह भी उनके लिए असह्य हो उठता है। प्रेम सान्निध्य का भूखा होता है। जब श्रीकृष्ण गायों के साथ वन में चले जाते हैं, गोपियां अत्यन्त दीन भाव से श्रीकृष्ण का पता पूछती हैं। इस प्रकार कवि निष्कुलानंद ने प्रारंभ के ६ कडवों तक स्नेह की महिमा का सोदाहरण गुणगान किया है। तदनन्तर दसवें कडवे में कंस के निमंत्रण पर अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण को मथुरा ले जाने का वर्णन है। अक्रूर नाम के प्रति व्यंग्य करते हुए गोपियों ने उन्हें प्राण हरनेवाले काल के समान कहा है। गोपियां श्रीकृष्ण को मथुरा जाने से रोकती हैं लेकिन उन दीन अबलाओं की आवाज का कोई प्रभाव सिद्ध नहीं होता। गोपियों की हृदयस्थ पुकार को अत्यंत मर्मयुक्त शब्दों में कवि ने व्यक्त किया है -

"मथुरा म जाजो रे प्रितम पातला रे, नाथिब अमने नोधारां मारा नाथ।
जरूर ने जावुं रे होय नियां तमने रे, तो ले जो श्यामला अमने रे साथ ।।"
(पद ३)

गोपियां श्रीकृष्ण के रथ को रोकने का भरसक प्रयत्न करती हैं, किन्तु वे असफल रहती हैं। अंत में रथ के जाने की दिशा में आंखों में आंसू लिए एकटक देखती रहती हैं। जब आंखों से रथ अदृश्य होता है, गोपियां बेहोश होकर धरती पर गिर जाती हैं।

श्याम के मथुरागमन से गोपियों की विरह-व्याधि बढ़ती गई । वे श्याम की भर्त्सना करते हुए दिन भर उदास रहती हैं । प्रियतम के सिवाय अन्य किसी की चर्चा उन्हें अच्छी नहीं लगती । अलबेले की प्रतीक्षा करते-करते वे अत्यंत व्याकुल हो उठी हैं । वे प्रियतम के सन्देश की प्रतीक्षा में थीं कि उनके हृदय की पुकार मानो अंतर्यामी सुन लेते हैं और उद्धव जी को बुलाकर उनके साथ संदेश भेजते हैं । प्रेम दोनों ओर पलता है । जिस प्रकार गोपियां श्रीकृष्ण के लिए दु:खी थीं उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी व्यथित थे । श्रीकृष्ण के आदेश से उद्धव जी संध्या समय गोकुल आते हैं । नंद-यशोदा द्वारा उनके स्वागत का वर्णन किया गया है । दूसरे दिन प्रात:काल में गोपियों से मिलने का वर्णन है । गोपियां अत्यंत जिज्ञासा भाव से अपने प्रियतम के समाचार पूछती हैं कि क्या वे हमें भूल तो नहीं गये हैं ? प्रत्युत्तरमें उद्धव जी कहते हैं कि उन्हें सदैव तुम्हारा ध्यान रहता है । वे रात-दिन तुम्हारा ही रटन करते हैं और तुम्हारे प्रेम को विस्मृत नहीं कर सके हैं ।

"रात दिवस रटन रहे छे वारंवार व्रज साथ ने ।
तमारा प्रेमनी वात व्रमदा ,नथी बिसरती नाथ ने ।।"

उद्धव जी जब गोपियों को श्रीकृष्ण के ब्रह्म स्वरूप के बारे में समझाते हैं तब प्रत्यक्ष रूप की पुजारिनी गोपियों को उनका उपदेश विष के समान प्रतीत होता है । जब वे ब्रह्म रूप का अवलम्ब छोड़कर अंतर में उनके परब्रह्मरूप का ध्यान धरने के लिए समझाते हैं तब गोपियां श्रीकृष्ण एवं उद्धव जी दोनों के प्रति व्यंग्य करती हैं । उन्हें इस ज्ञानमार्ग में कोई सारांश नहीं दिखाई देता । श्रीकृष्ण को लक्ष्य कर वे कहती हैं कि वे स्वयं योगी बने हुए हैं और दूसरों को योगी बनाने का उपदेश देते हैं । योगमार्ग का उपदेश हमारे प्रति निर्ममतापूर्ण व्यवहार है । हे उद्धव जी। आप योग का संदेश लाये उसकी अपेक्षा विषभरा कूप लेकर क्यों न आये -

"एवा संदेशा साहे उद्धव,केम ना ल्यो कूप विषनो भरी ।"

(कडवुं ३१-१०)

वे योगमार्ग अपनाने की अपेक्षा विष खाकर मरना अधिक पसंद करती हैं । उनके अभिप्राय में प्रेममार्ग गज सवारी के समान है जबकि ज्ञानमार्ग गर्दभ सवारी के समान

है । कंचन का त्यागकर गोपियां कीचड़ स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं । प्रेममार्ग उनके अभिप्राय में मणियों एवं रत्नों की माला है जबकि ज्ञानमार्ग शंखों के शृंगार के समान है । सुन्दर वस्त्र-धारण करना छोड़कर कौन मृगचर्म धारण करेगा ? इस प्रकार विभिन्न उदाहरणों द्वारा प्रेममार्ग की सरलता और ज्ञानमार्ग की कठोरता के वर्णन द्वारा गोपियों ने प्रेमलक्षणा भक्ति के प्रति अपना सहज आकर्षण सिद्ध किया है । गोपियां उद्धव जी को श्रीकृष्ण की गोकुल-लीला के विभिन्न स्थल बताती हैं । इन स्थलों का दर्शन कराते समय उनकी आंखों में निरन्तर अश्रु उमड़ते रहते हैं । उनका प्रेम-भक्तिपूर्ण हृदय देखकर उद्धव जी अत्यन्त प्रभावित होते हैं और दासानुदास होने की इच्छा प्रकट करते हैं । वे गोपियों से क्षमायाचना करते हुए कहते हैं कि मैंने बालक बुद्धि को लेकर जो कुछ भी कहा है उसे आप भूल जायें । श्रीकृष्ण के प्रति तुम्हारी स्नेह भक्ति सत्यपूर्ण है । तदनंतर वे गोपियों की अनुमति लेकर मथुरा जाना चाहते हैं । उद्धव जी को विदा करते समय विविध भेंट आदि भेजने का वर्णन मिलता है । उद्धव जी श्रीकृष्ण के पास जाकर विरहिणी गोपियों की मन:स्थिति का सजीव चित्र खींचते हैं । वे स्वीकार करते हैं कि मैं उपदेशक बनकर गया था किन्तु स्वयं शिष्य बनकर आया हूं -

"हूं तो गयो तो शीख देवा, पण सामुं शीख ई ने वळियो ।"

(कडवुं ४१-५)

उद्धव जी के इन शब्दों से श्रीकृष्ण प्रभावित होते हैं और वे स्वयं भी गोपियों की प्रेमभक्ति की सराहना करते हैं । कवि ने स्नेहशीलता के माहात्म्य पर भी प्रकाश डाला है । अंतिम पद में कवि ने प्रेमभक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए प्रेम भक्ति की तुलना में जप,तप योग को व्यर्थ कहा है । प्रेम के अभाव में काया को कष्ट देने पर भी भगवान प्राप्त नहीं हो सकते ।

गिरधर (सं० १८३५ से १९०६) :

वैष्णव भक्त कवि गिरधर का जन्म बड़ौदा जिले की पादरा तहसील के सावर नामक एक छोटे से गांव में हुआ था । इनके द्वारा रचित रामायण और श्रीकृष्ण चरित्र अत्यंत लोकप्रिय रहे हैं । ये विशेषकर बड़ौदा में ही रहते थे । संभव

है कवि दयाराम के साथ भी उनका संपर्क रहा हो । एक सफल पत्रकार के रूप में उनकी गणना की जा सकती है ।

श्रीकृष्ण चरित्र में गोपी-उद्धव संवाद का वर्णन मिलता है ।[१] कवि ने प्रारंभ में कृष्णार्पण की महिमा का वर्णन किया है । कृष्णार्पण किये बिना ज्ञान और कर्म मिथ्या सिद्ध होते हैं । एक प्रकार से इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन आद्यंत किया गया है । भ्रमरगीत प्रसंग के प्रारंभ में कवि ने विरहिणी गोपांगनाओं का सजीव चित्र खींचा है । वियोग-परितापतप्ता गोपियों को चन्द्र और चन्दन भी शीतलता प्रदान नहीं कर सकते । चिंतातुर वे निरन्तर प्रियतम के नाम का आलाप करती रहती हैं ।

"विरहातुर करती, चिंता धरती, आलाप करती आप ।
चंदन चंद्र नी निंदा करे छे, वियोग ने परिताप ।।"

(अध्याय २२-३)

उनकी इस विरह-व्यथा की परिकल्पना से आप्लावित होकर श्रीकृष्ण अपने प्रिय सखा उद्धव जी को ज्ञानोपदेश द्वारा विरहताप का शमन करने के लिए भेजते हैं -

"अहो उद्धव । हुं थयो कृतघ्नी, निर्दय निष्ठुर अपार ;
हुं व्रज-वनिता नो ऋणी रह्यो हुं, शो करूं प्रति उपकार ?
माटे समाधान करी आवो तेनुं, जईने गोकुल-मांहे ;
अध्यात्म ज्ञान उपदेश करीने, शोक शमावो त्यांहे ।"

(अध्याय २२-२८-२९)

श्रीकृष्ण के आदेश से उद्धव जी व्रज की ओर प्रस्थान करते हैं । वहां के प्राकृतिक सौंदर्य से उनका मन अभिभूत हो उठता है । संध्या समय गोकुल आकर नंद एवं यशोदा को ज्ञानोपदेश द्वारा पुत्र-भाव छोड़ने के लिए समझाते हुए श्रीकृष्ण की सर्व-व्यापकता पर प्रकाश डालते हैं -

"एक तमारो ए सुत नथी, सर्वनो आत्मा छे हरि ;
स्थावर जंगम विश्वमां, जुओ ज्ञान-दृष्टि ए करी ।"

(अध्याय २३-५८)

१- गिरधर कृत : कृष्ण-चरित्र : मथुरा खण्ड, अध्याय २२

दूसरे दिन प्रात:काल में नित्यकर्म से निवृत्त पीताम्बरादि से श्रीकृष्ण के समान विभूषित उद्धव जी को देखकर गोपियां उनका स्वागत करती हैं। श्रीकृष्ण की मधुर स्मृतियों से उनका अंत:करण भाव-विभोर हो उठता है और आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगती है। उस समय गुंजारव करता हुआ एक भ्रमर कहीं से आता है। उसे 'कपटी का सखा' कहकर गोपियां तिरस्कार व्यक्त करती हैं -

"हे मधुप। जानी वेगलो, तुं दूत धूरत नो थयो ;
तुं अमारे चरणे न लागीश, कृष्ण कपटी नो लह्यो।"

(अध्याय २४-१६)

भ्रमर के माध्यम से श्रीकृष्ण और उद्धव दोनों के प्रति गोपियां व्यंग्य करती हैं। श्रीकृष्ण के कुब्जा के प्रति आकर्षण को लेकर करारा व्यंग्य किया गया है। काले कृष्ण और कुबड़ी कुब्जा की जोड़ी को अनोखी कहकर उपहास किया गया है -

"बन्ने चतुर शिरोमणि मळियां, नथी कोई सांपण खोड़जी,
कृष्ण काळो, कुब्जा कुबड़ी, सरखे सरखी जोड़ जी।"

(अध्याय २५-६)

२६वें अध्याय में उद्धव के ज्ञानोपदेश का वर्णन है। अनल, अनिल, आकाशादि पंचभूत के समान ईश्वररूपी महाभूत का निवास घट-घट में है -

"जेम चराचर सहु भूतमां, महाभूत व्यापक छे सदा ;
जळ, अनळ, अनिल, आकाश, अवनी तणा हुं रह्यो सर्वदा।"

(अध्याय २६-३)

प्रत्युत्तर में गोपियां कहती हैं कि हमें तो प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण के दर्शन की अभिलाषा है। वे नंदलाल को छोड़कर अन्य किसी की उपासना करना नहीं चाहतीं। ज्ञानमार्ग की भर्त्सना करते हुए कहती हैं कि भक्ति रहित ज्ञान छिलकों के समान थोथा है -

"शुद्ध प्रेम पराभक्ति विना, शुष्क ज्ञान कये छे अजाण ;
जेम तांदुल काढ़ी लीधा पूठे, कुस्का कूटे कांण ?"

(अध्याय २६-३३)

गोपियां अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक श्रीकृष्ण के दर्शन की उत्कंठा प्रदर्शित करती हैं। अत्यंत आर्द्रवाणी में उद्धव जी से पूछती हैं कि हम विरहिणियों को शोकमुक्त करने के लिए वे कब आवेंगे -

"क्यारे आवशे अमो विरहिणी नो शोक सर्वे टालवा।"

(अध्याय २७-१०)

गोपियां श्रीकृष्ण का संदेश लाने के कारण उद्धव जी के प्रति आदर व्यक्त करती हैं और प्रेम से उनकी पूजा करने के पश्चात् श्रीकृष्ण-क्रीड़ा-स्थल बताती हैं। गोविन्दमय गोपिकाओं के मन की विह्वलता देखकर उनका ज्ञान-गर्व दूर हो जाता है और श्रद्धा से गोपीचरणों में मस्तक झुका देते हैं। प्रेम से परिप्लावित उद्धव जी मथुरा जाकर श्रीकृष्ण के समक्ष गोपियों की अत्यंत प्रशंसा करते हैं।

दयाराम (सं० १८३३ से १९०९) :

मध्यकालीन गुजराती साहित्य के अंतिम कवि दयाराम एक अत्यंत तेजस्वी नक्षत्र हैं जिसका प्रकाश अद्यावधि अक्षुण्ण है। अपनी कवि-प्रतिभा और काव्य-सिद्धि को लेकर अपने समकालीन साहित्यकारों में वे शीर्ष हैं। उनका साहित्य अत्यंत विपुल होने पर भी कलात्मक एवं साहित्यिक गुणों से सम्पन्न है। उन्होंने अपने चिन्तन एवं मनन द्वारा शुद्धाद्वैत एवं भक्ति-रहस्य का निरूपण करने वाली अनेक कविताओं का सृजन किया है।

नर्मदा तट पर स्थित चांदोद कवि दयाराम का मूल निवास स्थान था। उनका जन्म उनके ननिहाल डभोई में सं० १८३३ में हुआ था। बचपन में ही मां की ममता और पिता के प्यार से वंचित किशोर कवि ने अपना अधिकांश समय ननिहाल में बिताया। वैष्णव परिवार में जन्म धारण करने से उनके जीवन में वैष्णव धर्म के संस्कार सहज ही उतर आये थे। भजन-कीर्तन के प्रति आरंभ से ही उनकी विशेष अभिरुचि थी। शुद्धाद्वैत के प्रकाण्ड पण्डित और भगवत्-भक्त डाकोर के प्रसिद्ध पुराणी इच्छाराम जी भट्ट ने दयाराम को अपना शिष्य बनाकर भक्तिमार्ग का उपदेश दिया। भट्ट जी ने ही उन्हें कविता-कला की दीक्षा दी और कीर्तनकार के रूप में जीवन-यापन करने की बलवती प्रेरणा से कवि ने सम्पूर्ण भारत की तीन बार और श्रीनाथ जी की सात बार यात्रा

की थी । ऐसा जन-साधारण में आज भी प्रसिद्ध है । इन यात्राओं द्वारा उन्होंने विविध भाषाओं और विभिन्न अनुभवों का ज्ञान अर्जित किया । उनकी ब्रज, मारवाड़ी, मराठी, पंजाबी, बिहारी, सिन्धी और उर्दू रचनाएं प्रमाण स्वरूप हैं । अपनी उत्तरावस्था में वे अधिकांश डभोई में रहे जहां कवि के रूप में उनकी प्रसिद्धि निरन्तर बढ़ती गई । वे आजीवन अविवाहित रहे । उन्होंने अपने आपका समर्पण एक भक्त के रूप में भगवान को कर दिया था । पुष्टि सम्प्रदाय की प्रणालिका के अनुसार जब वे १४ वर्ष के थे उन्होंने ब्रह्म सम्बंध लिया था और २८ वर्ष की उम्र से ही पक्के मर्यादावादी बन चुके थे ।

कवि दयाराम का व्यक्तित्व अत्यंत आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक था । मधुर कंठ, संगीत एवं गान की कुशलता, रसिक स्वभाव, आकर्षक वेश भूषा आदि उनके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएं थीं । उनके व्यक्तित्व के समान उनका कवि रूप भी कम आकर्षक नहीं । उनकी कविता का अधिकांश स्थायीनिधि के रूप में हमारे पास है । श्री केशवलाल ध्रुव ने उनके लिए उचित ही कहा है -"मध्यकालीन कविता में इस कवि रूपी लता ने नवपल्लवित होकर नयनरम्य और हृदयाकर्षक कविता प्रदान की ।" उन्होंने हजारों पदों की रचना की है । उनके प्रशंसकों ने तो इन पदों की संख्या नवा लाख बताई है । पदों के अतिरिक्त अन्य लघु या बृहदाकार कृतियों की संख्या ७५ से भी अधिक है । साहित्य के इस विपुल भांडार में अधिकांश सैद्धान्तिक ग्रंथ हैं । 'रसिक-रंजन', 'भक्ति विधान', 'सिद्धान्त सार', सम्प्रदाय सार' और 'पुष्टि पथसार' जैसी ब्रजभाषा की रचनाएं और 'रसिक वल्लभ', 'भक्ति पोषण', 'पुष्टि रहस्य' आदि गुजराती कृतियों की परिगणना साम्प्रदायिक रचनाओं में की जाती है । गुजराती कृतियों में 'रसिक वल्लभ' अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है । इसमें ज्ञान तथा भक्ति का विवाद उपस्थित किया गया है और अनेक उदाहरणों द्वारा ज्ञान पर भक्ति की विजय सिद्ध की है । कवि ने ज्ञान को साधन और भक्ति को साध्य कहा है । ज्ञान का फल मोक्ष है और भक्ति का फल भगवान हैं । गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी ने 'रसिक वल्लभ' को दयाराम की उत्तम कृति माना है । दयाराम के शास्त्रज्ञान तर्कशक्ति और पुष्टिमार्ग के प्रतिनिष्ठा के दर्शन इस रचना में होते हैं । कवि के व्यक्तित्व और उनके काव्य को परखने की यह एक चाबी है ।

`भक्ति पोषण` दयाराम की एक अन्य उल्लेख रचना है जिसमें भक्ति की महिमा, उसका स्वरूप और उसके प्रकारों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें ज्ञान और भक्ति का विशद विवाद उपस्थित किया गया है। श्रीकृष्ण के प्रति कवि के मन में अनन्यभाव की भक्ति है। कवि ने भक्तिमार्ग को सरल, सुगम और सर्वजन सुलभ बताया है। उनके भगवद्गुणानुवाद सम्बंधी साहित्य में कतिपय आख्यानात्मक कृतियां भी हैं। इन कृतियों का आधार ग्रंथ श्रीमद् भागवत है। `रुक्मणी विवाह` `अजामिलाख्यान` आदि उनकी उल्लेखनीय आख्यानात्मक कृतियां हैं। आख्यानकार के रूप में उन्हें प्रेमानंद जितनी सफलता प्राप्त नहीं हुई। उन्होंने जिस प्रकार ब्रजभाषा में `भगवतानुक्रमणिका` काव्य की रचना की है उसी प्रकार गुजराती में भी भागवत का सारांश मात्र १२३ पदों में प्रस्तुत किया है। गीतिकाव्यात्मक इन रचनाओं के प्रणयन में उन्हें अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। अपनी रसिकता एवं कल्पना की सहायता से अनेक प्रसंगों को परिवर्तित एवं परिवर्धित रूप में प्रस्तुत करने का कवि ने स्तुत्य प्रयास किया है। `प्रेमरस गीता` और `प्रेम परीक्षा` कवि की दो ऐसी महत्वपूर्ण रचनाएं हैं जिनकी परिगणना भ्रमरगीत काव्य परम्परा के अन्तर्गत की जा सकती है। इन दोनों रचनाओं का विषय भागवत के गोपी-उद्धव संवाद से पूर्णतया संबंधित है। कृष्ण-विरह संतप्ता गोपियों के हृदय-मंदिर में उद्धव जी द्वारा दिया गया ज्ञानोपदेश प्रविष्ट न हो सका। वे प्रेमभक्ति की गुजारिनें हैं जिनके मन-प्राणों में श्रीकृष्ण समाहित हैं।

प्रेमरसगीता :

`प्रेमरस गीता` के प्रारंभ में कवि ने महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की गुरु के रूप में वंदना की है। तदनंतर श्री विट्ठल, अष्टसखा आदि को भी प्रणाम किये हैं :-

" प्रथमे हुं प्रणमुं, श्री गरू ना नायजी, मांगल्य रूप श्री वल्लभराय जी,
श्री विट्ठल श्री गिरिधरलाल जी, अष्टसखा ने करुं प्रणाम जी।"

(पद १)

कवि ने संपादात्मक पहलू को अधिकप्रश्रय दिया है। काव्यारंभ में स्वयं कवि ने इसको स्वीकार करते हुए कहा है -

"थाम प्रकाश तो करूं वर्णन, प्रेमरस गीता तणुं ;
व्रज वनिता उद्धव तणा, जहे मां उत्तर प्रति उत्तर घणु ।"
(पद १)

श्रीमद् भागवत के अनुसार ही कवि ने श्रीकृष्ण द्वारा उद्धव को व्रज भेजने की कथा का वर्णन किया है । श्रीकृष्ण उद्धव जी को व्रजवासियों के पास जाकर योग एवं आध्यात्मिक ब्रह्म का उपदेश देने का स्पष्ट आदेश देते हैं । गोकुल आकर उद्धव जी सर्व-प्रथम नंद यशोदा से ज्ञानोपदेश देते हुए श्रीकृष्ण के प्रति पुत्र-भाव न रखकर उनके ब्रह्मरूप को अपनाने के लिए समझाते हैं । प्रत्युत्तर में यशोदा अपने दृढ़ पुत्र-प्रेम को ~~अकारते~~ व्यक्त करते हुए श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन करती हैं । उनका श्रीकृष्ण के ब्रह्मरूप में विश्वास नहीं । वे तो अपने आपको उनकी माता ही समझती हैं और परमेश्वर होकर अपना छोटी-छोटी लीलाएं क्यों करेगा ऐसा अत्यंत स्वाभाविक प्रश्न उनके भोले हृदय में उद्भावित होता है । एक बार दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखकर श्रीकृष्ण अन्य बालक की कल्पना से किस प्रकार नाराज हो गये थे आदि प्रसंग बाललीला की विशेषताओं से युक्त हैं ।

विरह व्यथिता गोपियां श्रीकृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वर्णन मार्मिक शब्दों में करती हैं । स्वार्थपूर्ण प्रेम की भर्त्सना करते हुए वे उन्हें प्रवंचक तक कहती हैं । ~~स्वार्थपूर्ण प्रेम~~ उद्धव जी गोपियों को ज्ञान एवं योगमार्ग के अनुसरण द्वारा अपना मन परब्रह्म में संलग्न करने के लिए समझाते हैं । वे परब्रह्मरूप श्रीकृष्ण की सर्वव्यापकता द्वारा यह सिद्ध करना चाहते हैं कि उनका वियोग संभव नहीं । वे योगमार्ग को राजमार्ग बताते हैं और प्राणायाम आदि अष्टांग योग द्वारा ब्रह्मानंद की साधना करने के लिए समझाते हैं । उद्धव जी के मुख से योगमार्ग की बातें सुनकर गोपियों के मन में असह्य पीड़ा पैदा होती है । योगमार्ग का उपदेश विरहाग्नि में जली हुई गोपियों को जले पर नमक छिड़कने के समान लगता है । अपने स्वाभिमान पर आघात पहुंचाने वाले उद्धव जी पर वे घायल सिंहनी की तरह प्रहार करती हैं और कहती हैं कि प्रेमभक्तियुक्त व्रजवासियों के लिए योगमार्ग व्यर्थ है । इस योगमार्ग की साधना आप स्वयं काशी में जाकर कीजिए -

"काशी जइ तमे जोग साधो, अमारे नथी कामनो,
अमारे एक आशरो छे, अचल सुंदर श्यामनो ।"

(पद १५)

गोपियों के मन में श्रीकृष्ण के प्रति अत्यंत भाव है । उनके हृदय स्नेह से परिपूर्ण हैं । बेचारे योग के लिए वहां कोई जगह नहीं -

"अमारां डर स्नेहभर्यां, त्यांहा जोग विचारो क्यांहां ठरे ?"

वे किसी भी मूल्य पर अपने प्रेम मार्ग का त्याग करने के लिए तैयार नहीं । "प्राण जाय पर वचन न जाई" इ०७० के समान उनका कृष्ण के प्रति अविचल प्रेम है । वे योगमार्ग का अनुसरण करना घास खाने के समान समझती हैं । चातक के समान उनका प्रेमव्रत निश्चल है । वे ज्ञानी और प्रेमी का भेद मेढ़क और मछली के उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करती हैं । मेढ़क पानी के अभाव में कीचड़ से संतोष कर लेते हैं किन्तु मछलियां पानी के अभाव में अपने प्राणों का त्याग कर देती हैं । ज्ञानी एवं प्रेमी का भेद स्पष्ट करने के लिए अनेक दृष्टांतों की वर्षा की गई है ।

इसी बीच मधुपुरी से एक भ्रमर का आगमन होता है । उसके माध्यम से गोपियां श्रीकृष्ण की पुरुष मात्र की प्रवंचकता पर व्यंग्य करती है :-

"मधुप । उड़य मा, आवो रहे, इतवार तारो न आणीये,
तुं काळो छे ते होइश कपटी, वीत्युं माटे जाणीये ।"

(पद १८)

विरह-विधुरा गोपियों ने भ्रमर के माध्यम से अनेक उपालंभ दिये हैं । गोपी-हृदय की अत्यन्त सरलता और स्वाभाविकता देखकर उद्धव जी के मन में प्रेम-भक्ति का आविर्भाव होता है और वे स्वीकार करते हैं कि स्नेह के सागर के समक्ष योग के कूप का कोई मूल्य नहीं -

"ज्यांहां समुद्र उलच्यो स्नेहनो, त्यांहां जोग -कूप नुं शुं गणुं ;
उद्धव कहे" सहु शंडी ने, हुं चरण गोपीनां भजुं ।"

(पद १९)

इन शब्दों द्वारा उद्धव जी अपनी पराजय स्वीकार करते हैं । जो गुरु बनकर योगमार्ग का उपदेश देने आये थे वे गोपियों की प्रेम-लक्षणा भक्ति से अभिभूत होकर

शिष्य बनकर रह जाते हैं -

" गुरु थवा आव्या हता पण, शिष्य थया श्याम तणा ।"

(पद १६)

उद्धव जी का ज्ञानमार्ग गोपियों के प्रेम के समक्ष पूर्णतया तिरोहित हो जाता है । अब वे ज्ञानी न रहकर प्रेमी बन जाते हैं । भागवत के अनुकूल वे व्रज में लता बनने की इच्छा व्यक्त करते हैं । तत्पश्चात् श्रीकृष्ण लीला स्थलों एवं भेंट आदि का भागवतानुसारी वर्णन है । काव्यान्त में माहात्म्य वर्णन भी मिलता है जो गुजराती भ्रमरगीताओं की प्रमुख विशेषता रही है -

'जे गाय शीखे सांभळे, तेहने प्रसन्न थाय व्रज नो धणी,

प्रेम -लक्षणा भक्ति आपे, आशा पूरे मन तणी ।"

(पद २१)

प्रेमरस गीता में कवि की वाणी आदि से लेकर अंत तक भावपूर्ण है । कवि द्वारा रचित कतिपय गरबियाँ भी भ्रमरगीत काव्य में परिगणनीय हैं ।

प्रेम परीक्षा :

भक्त कवि दयाराम रचित 'प्रेम परीक्षा' भी भ्रमरगीत काव्य-परंपरा में एक उल्लेखनीय रचना है । उद्धव जी गोपियों को सर्व व्यापक, निराकार, परम चैतन्य श्रीकृष्ण स्वरूप का ध्यान करने का उपदेश देते हैं । किन्तु अपने इस योगमार्ग के उपदेश में उन्हें सफलता नहीं मिलती । अध्यात्म या ब्रह्म की साधना का उपदेश गोपियों के हृदय में प्रविष्ट न हो सका । वे तो श्रीकृष्ण को ही अपना सर्वस्व समझती हैं और उनके प्रति अनन्यभाव लिए हुए हैं ।

'प्रेम-परीक्षा' २६ कंडिकाओं का काव्य है जिसमें आद्यन्त प्रेम-मार्ग की प्रशंसा की गई है । कवि काव्यारंभ में ही कहता है कि प्रेम की बात ही निराली है । उसे वाणी से नहीं कहा जा सकता, कोई अनुभवी ही जान सकता है । प्रसूता की पीड़ा को बांझ स्त्री कैसे जान सकती है ? दूसरे के कहने मात्र से अनुभव कैसे किया जा सकता है ? जिस प्रकार गूंगा शक्कर खाने पर और मधुर स्वप्न देखने के पश्चात् सब कुछ जानते हुए भी अपने अनुभव का वर्णन नहीं कर सकता वैसी ही स्थिति प्रेम की पुजारिन गोपियों की है । अनुभवी ही प्रेम की महिमा को जान सकता है -

"उद्धव जी रे अलगी रे, बात ए प्रेमतणी ;
कोई अनुभवी जाणे रे, कहेतां न आवे बणी ।। १।।"

गोपियां कहती हैं कि प्रेम स्वयंभू है । प्रेम की पद्धति सीखने और सुनने से नहीं आती । उनके अभिप्राय में स्नेह का रास्ता अगम्य है । जो उसे एक बार पा लेता है उसे ज्ञान और योग मीठा नहीं लगता -

"रे अगम पथ स्नेह नो रे, ओधव जी। नथी दीठो ;
त्यां लगी ज्ञान गोठे रे, जोग पण लागे मीठो ।। २३ ।।"

काव्यान्त में गोपियों के मुख से प्रेमपूर्ण वचन सुनकर उद्धव जी की भ्रान्ति दूर हो जाती है । योग के जंजाल से वे मुक्त हो जाते हैं और उनका मन स्नेह से भर जाता है । वे अभिमान रहित होकर गोपियों के चरणों में नमस्कार करते हैं -

"अभिमान मूकी ने रे, उद्धव गोपी पाय पड्या"

(पद २६)

इस प्रकार 'प्रेम परीक्षा' भावात्मक काव्य है जिसमें ज्ञान पर भक्ति की और मस्तिष्क पर हृदय की विजय बताई है ।

श्री के.का.शास्त्री जी ने कवि दयाराम की पद रचना को उत्तम कहा है । "मध्यकालीन भक्ति कविता को अपनी सर्वांगीण प्रतिभा से प्रतिभासित करने वाले कवि दयाराम हैं । इनकी गरबियां एवं पद गुजराती साहित्य की उत्तम रचनाएं हैं ।"[१] उनके पद कवित्व के उच्च शिखर का दर्शन कराते हैं। नरसिंह तथा भालण के समय से जो पद-रचना होती आ रही थी उसमें दयाराम ने विविध रागरागिनियों का समावेश करके पद-काव्य को समृद्ध किया है । अपनी वर्णनात्मक शक्ति के सहारे कवि ने व्रज का चित्र दृष्टि-समक्ष उपस्थित किया है । कवि ने स्वयं गोपियों से तादात्म्य का अनुभव किया है और भाव-विभोर होकर विरह-संतप्ता व्रजांगनाओं के उत्कट कृष्ण प्रेम को वाणी प्रदान की है । श्री गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी ने भी प्रेमानन्द के पश्चात्

१- गुजरात की हिन्दी को देन : श्री के.का.शास्त्री, रजत जयंती ग्रंथ : राष्ट्र भाषा प्रचार समिति वर्धा, १९६२ ई० पृष्ठ ५३

दयाराम को ही मध्यकालीन गुजराती कविता का श्रेष्ठ कवि कहा है।[1] श्री कन्हैयालाल मुन्शी जी ने भी उन्हें भाषा की संस्कारिता और समृद्धि में, भावों के जादू भरे प्रवाह में भाव वैविध्य की रंग-बिरंगी चमक में, हृदय लेधक शब्द-माधुर्य की मोहिनी और प्रणय-पिपासा की तीव्रता में बेजोड़ कहा है।[2] अंत में गुजराती साहित्य के मूर्धन्य समालोचक एवं इतिहासकार श्री अनंतराय रावल के शब्द स्मरणीय हैं -

"जिस वैष्णव कविता का आरंभ नरसिंह मेहता के समय से हुआ, उसका अन्तिम उच्च शिखर दिखलाने वाली कविता के सर्जक इस वैष्णव नागर कवि के अवसान के साथ गुजराती साहित्य का मध्यकाल समाप्त होता है और उसका अर्वाचीन युग प्रारंभ होता है। गुजरात में अर्वाचीन युग की हवा की लहरें दयाराम के उत्तरार्द्ध से ही लहराने लगी थी। परन्तु उन लहरों ने पुरोगामी मध्यकालीन कवियों की प्रणाली में मस्त इस कवि को जरा भी स्पर्श नहीं किया। इसीलिए वे मध्यकालीन गुजराती साहित्य के अंतिम तेजस्वी प्रतिनिधि बन पाए हैं।"[3]

परमानंद मणिशंकर भट्ट तथा नारायणजी गोवर्धनराम :[4]

इन दोनों कवियों ने संयुक्त रूप से उद्धव और गोपियों के संवाद के विषय

१- "सो फार एज पोलिटिकल पावर्स आर कन्सर्न ही इज अनडाउटेडली द ग्रेटेस्ट जीनियस सिन्स द डेज़ आफ प्रेमानन्द. हिज़ पोयम्स आन कृष्ण एण्ड द मेड्स आफ गोकुल आर ए स्ट्रीम आफ बर्निंग लावा आफ रिआलिस्टीक पेशन एण्ड लव एण्ड इट कीयूडनेस आफ राइटिंग डू नाट टेक अवे फ्राम द मेरिट्स आफ ए पोएट, ही इज़ ए वेरी ग्रेट पोएट इनडिड".

क्लासिकल पोएट्स आफ गुजरात : गोवर्धनराम, पेज ६७-६८

२- मध्यकालीन साहित्य प्रवाह : कन्हैयालाल मुन्शी, पृष्ठ ३८६

३- कवि-श्री-माला : अनन्तराय रावल, १९६२ ई० पृष्ठ ८२

४- अर्वाचीन कविता : सुन्दरम् पृष्ठ ५२४, द्वितीयावृत्ति : १९५३

में 'प्रेमगीता' लिखी है। विषय की रमणीयता को लेकर काव्य रसपूर्ण बना है किन्तु काव्य को अर्वाचीन बनाने के कारण कुछ ऐसी पंक्तियां भी गोपी मुख से निसृत हुई हैं -

"कमानां हाथ मां स्थापी, सभा आकूर ज्यां आपी ?
मफा लदले अरे। तानी प्रभुत्यां मोज माणे छे।"

प्रस्तुत काव्य में कतिपय सुन्दर काव्य पंक्तियां भी मिलती हैं -

"जे मधुरां वचनो वदी ने, अमने वदने मधु चुम्बन देता।
रास रची एकाश रह सुविलास करी प्रीति पीयुषोना ;
एह प्रभु तहीं कामिनी आगल, वात यथेष्ट करी कोइ टाणे,
ग्राम्य महीं वसनार सुनी कवि शुं प्रभु याद करी दिल आणे ?"

छोटालाल :

भ्रमरगीत काव्य-परम्परा में कपडवंज निवासी कवि छोटालाल का नाम उल्लेखनीय है। छोटालाल कृत 'काव्य' में गोपी-उद्धव संवाद के कुछ पद मिलते हैं। 'कहीजो ओधव कृष्ण श्याम कुं क्यों हजुं गोकुल नहीं आयो'[1] में विरहिणी गोपियों के विरह का मार्मिक वर्णन किया गया है। "गोपिका संगे कृष्णे कपट कीधुं"[2] भी इसी विषय से सम्बंधित है। 'अबूजा' को लेकर कतिपय टुमरियां भी कवि छोटालाल ने कुशलतापूर्वक लिखी हैं।[3]

शिवानन्द (सं० १९४८ से १९९६) :

स्वामी शिवानंद जी कृत 'प्रेम के योग' रचना भी भ्रमरगीत काव्य-परम्परा के अंतर्गत परिगणित करने योग्य है। स्वामी जी ने भागवत के इस प्रसंग को गद्य-पद्य के मिश्र प्रयोग द्वारा संवादात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। भागवत के समान ही रथ

१- छोटालाल कृत काव्य - पृष्ठ १८
२- वही, ,, २२
३- ,, ,, ३१,३२

संध्या समय नंद के द्वार पर आता है। यशोदा अपने प्रिय पुत्र के समाचार उद्धव से जानना चाहती हैं। उनके मुख से विरह वात्सल्य का मार्मिक चित्रण हुआ है। नन्द एवं यशोदा का पुत्र के प्रति प्रेम देखकर ज्ञानी उद्धव का अहं गलने लगता है। फिर भी उनका ज्ञानोपदेश चलता रहता है। वे श्रीकृष्ण के सर्वत्र व्याप्त होने की बात कहते हैं और विरह वेदना को भुला देने के लिए समझाते हैं :-

"व्यापी रह्या छे कान हृदय खंड मां
माजी विरह वेदना ने टालो ----------।"[१]

उद्धव की ज्ञानभरी वाणी का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे तो अपने प्यारे पुत्र को गोद में लेने के लिए तरसती हैं और उनकी आंखों में से निरन्तर अश्रु-वर्षा होती रहती है। नंद भी पुत्र के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए लालायित हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल में गोपियां नंद के द्वार पर रथ देखती हैं और श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन की अभिलाषा रखती हैं। उद्धव उन्हें भी स्थूल देह के प्रति प्रीति नहीं रखने के लिए कहते हैं। गोपियां श्रीकृष्ण के स्वार्थी स्वभाव की भर्त्सना करते हुए कहती हैं -

"अमेरे तो ने एक छ्य, इसीकु हम अनेक,
हंसा सरोवर बहुत छ्य, सरोवर हंसा एक।
शुं करीए लाचार। लाचार। ने लाचार।"[२]

ब्रज वनिताएं अपनी विवशता के कारण निरन्तर रोती रहती हैं और प्रेम में निमग्न होकर कृष्ण! कृष्ण! पुकारने लगती हैं। उद्धव उन्हें श्रीकृष्ण के साक्षात् परमात्मा होने की बात कहते हैं और उनके सर्वव्यापी रूप के बारे में समझाते हैं। सभी गोपियां उद्धव की बात मानने से इन्कार कर देती हैं और भ्रमर के माध्यम से व्यंग्य करती हैं। उद्धव को अब प्रतीत होता है कि योग प्रेम के सामने पानी भरता

१- प्रेम के योग : शिवानन्द सरस्वती
प्रकाशक : शिवाश्रम : आंलोली (जिला-खेड़ा) सं० २०१७ प्रथमावृत्ति पृ० १०

२- वही, पृष्ठ १६

है । अपार स्नेह-सागर के सामने उन्हें पराजित होना पड़ता है । अंत में प्रेम की प्रशंसा करते हुए योग के कठिन श्रम को व्यर्थ की प्रक्रिया बताते हैं -

"शा माटे श्रम करो, गोपी तुज प्रेम भक्ति साची,
रहो कृष्ण मां तम राची ।"[1]

महाकवि न्हानालाल दलपतराम (१८७७ ई० से १९४६ ई०) :

कवि न्हानालाल का जन्म १८७७ ई० में अहमदाबाद में हुआ था । उनके पिता दलपतराम भी अपने युग के लोकप्रिय कवि थे । कवि न्हानालाल प्रारंभ में `प्रेमभक्ति` उपनाम से लिखते थे । `वसंतोत्सव`, `वेणु विहार`, `द्वारिका प्रलय`, `कुरुक्षेत्र` तथा `हरिसंहिता` उनकी उल्लेखनीय काव्य रचनाएं हैं । `हरि संहिता` पुराण काव्य है- जिसे कवि ने अपनी काव्य यात्रा का महातीर्थ कहा है । कवि के विशिष्ट ही शब्दों में यह `हरिसंहिता प्रेम लक्षणा भक्ति का गीत है ।[2] उनके `प्रेमाभक्ति` उपनाम की सार्थकता इस कृष्ण काव्य में सिद्ध हुई है । श्रीमद् भागवत के द्वादश स्कंधों के समान ही यह महाकाव्य द्वादश मंडलों में विभक्त है । इस प्रकार से इस महाकाव्य को नवभागवत कहा जा सकता है । कवि के आकस्मिक निधन के कारण `हरि संहिता` महाकाव्य अपूर्ण है । उसमें श्रीकृष्ण की उत्तरकालीन तीर्थयात्राओं का वर्णन है । इस कृष्ण-काव्य का कुछ अंश भ्रमरगीत काव्य-परम्परा के अनुकूल है । `ओधव ! क्यहारे आवशे वनमाली` में गोपियों के विरह के साथ-साथ साकार रूप के प्रति उनके अटूट विश्वास को भी देखा जा सकता है ।[3] एकादश मंडल का अध्याय ४२ भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

देवजी रा. मोढ़ा :(जन्म १९१३ ई०) :

पोरबन्दर निवासी श्री देवजीभाई वर्तमान गुजराती साहित्य के उल्लेखनीय

१- प्रेम के योग : शिवानन्द सरस्वती, प्रकाशक : शिवाश्रम : आंत्रोली (जिला-खेड़ा) सं० २०१७ प्रथमावृत्ति पृष्ठ ५२

२- `हरि संहिता` : न्हानालाल दलपतराम कवि, ग्रंथ :१ प्रस्तावना पृष्ठ ११ प्रकाशक : महाकवि न्हानालाल स्मारक समिति,अहमदाबाद १९५९ ई०

३- वही, पृष्ठ : ८४

कवि हैं । 'प्रयाण', 'श्रद्धा', 'आरत', 'अनिद्रा', 'वनश्री' 'राधिका' आदि उनके प्रमुख काव्य-संग्रह हैं । उनके 'वनश्री', काव्य-संग्रह को गुजरात सरकार ने १९६४ ई० के द्वितीय उत्तम काव्य-संग्रह के रूप में पुरस्कृत किया था । 'राधिका' काव्य संग्रह की अधिकांश रचनाओं में श्रीकृष्ण के विरह से व्यथित गोकुल और राधा का मार्मिक वर्णन मिलता है । विरहिणी राधा श्रीकृष्ण के साथ अपनी तुलना करते हुए कहती है कि मैं तो दीन गोप बालिका हूं और वह मथुरा का राजा है -

'हुं साधारण गोप बालिका, तुं मथुरा नो राजा ।'[1]

श्रीकृष्ण के मथुरागमन को ऐकार गोकुल प्राणहीन हुआ है । उसे नवजीवन प्रदान करने के लिए श्रीकृष्ण को बुलाया जा रहा है. -

' आ गोकुलियुं लोपातुं जाय ।
ओमां पगलां पगोतां लहीं थाय ।'[2]
अब विरहाग्नि में तप-तप कर गोरी
राधिका कुरूप कुब्जा बन रही है -
'ने वेण तारा विजोग तणा दन मां शेकाई
आ राधिका ये कुब्जा थई जाय ।'[3]

वह अपनी सखी से अनुमान करने के लिए कह रही है कि मथुरा से श्याम कब वापस गोकुल आयेंगे ? संभव है उन्हें मथुरा नगरी का वैभव गोकुल के साधारण जीवन से विशेष पसंद आया होगा -

'एने गमी गई मथुरा नगरी, गमी गयां राज ने पाट ;
तहीं आरस ना महेल, अहीं नव माटीना य मकान ।'[4]

१- राधिका : देवजी रा. मोढ़ा, पृ० १०, प्रकाशक : देवजी रा. मोढ़ा 'किरण' १२, शिक्षक सोसाइटी, पोरबंदर ।

२- वही, पृष्ठ २२

३- वही, पृष्ठ २२

४- वही, पृष्ठ ३२

भ्रमर के गुंजारों को सुनकर उनकी विरह-व्यथा तीव्र हो उठती है -

"मधुप । तारा गुंजन केरी मोरली वागी ।
मोरली-सूरे उर ने मारुं कुसुम उठ्यु फाबकी जागी ।"[१]

कभी राधा रूठकर कह उठती है कि अब मैं उन्हें गोकुल बुलाना नहीं चाहती फिर भले ही गोकुल उजड़ क्यों न जाय -

"मारे नथी तेडवो श्याम ।
को एना विण जाय उजडतुं
भर्युं भर्युं गोकुल गाम ।"[२]

कभी राधा को ऐसा लगता है कि श्याम के साथ स्नेह करके उसने बड़ी भारी गलती की है । उसे मालूम नहीं था कि श्याम उसे इस प्रकार छोड़कर चले जायेंगे -

"श्यामनी साथे स्नेह क्यों,ई मोटी थई मुज भूल ।
ना जाण्युं के चाल्यो जशे, मने मूकी आप अटूल ।"[३]

कभी राधिका श्रीकृष्ण को जान-बूझकर नहीं तो भूलकर भी विरहताप मिटाने के लिए गोकुल आने को कहती है -

"तमे एक वार आवो गोकुल मां ।
जाणी बुझी ने कदी ना आवो तोय तमे
एक बार आवी चढो भूल मां ।"[४]

इस प्रकार विरहिणी राधा के विभिन्न भावों के अनेक मार्मिक चित्र प्रस्तुत काव्य संग्रह में मिलते हैं ।

१- राधिका : देवजी रा.मोढ़ा-पृष्ठ २१, प्रकाशक : देवजी रा.मोढ़ा 'किरण' १२, शिवाक सोसाइटी, पोरबंदर ।

२- वही, पृष्ठ ४१

३- वही, पृष्ठ ४१

४- वही, पृष्ठ ४५

मुकुन्दभाई वि. पाराशर्य :

भावनगर निवासी कवि श्री मुकुन्दभाई की भक्तिपूर्ण रचनाओं में आर्त हृदय की पुकार है। 'अर्चनो', 'दीपमाला' तथा 'कंठ चातक नो' उनके उल्लेखनीय काव्य संग्रह हैं। 'कंठ चातक नो' में ३९ रचनाएं संकलित हैं, जिनमें से कतिपय रचनाओं में भ्रमरगीत काव्य की-सी भाव परम्परा के दर्शन होते हैं। मथुरा स्थित श्रीकृष्ण को प्रेम पूर्वक गोकुल में बुलाया जा रहा है -

"आवो, माधव गोकुल आवे"[१]

श्रीकृष्ण से अनुनय विनय पूर्वक एक बार गोकुल की सुध लेने के लिए कहा गया है -

"आखी धरती मां गोकुल गामडुं रे, एक वार तो ने संभाल रे श्याम"।[२]

श्री त्रिकमराय जी हवेली (एडन) :

एक संक्षिप्त भ्रमरगीत श्री त्रिकमराय जी हवेली(एडन) शताब्दी, महोत्सव स्मारक ग्रंथ में प्रकाशित हुआ है।[३] यह परम्परानुगत ही कहा जा सकता है। संध्या-समय उद्धव जी के गोकुलागमन का वर्णन है। उद्धव जी अपने साथ श्रीकृष्ण के पत्र भी लाते हैं -

"एक समे माधव जी श्री गोकुल मां आव्या,
नंद तणे घेर उतर्या हरिना कागल लाव्या।"[४]

दूसरे दिन प्रातःकाल में गोपियों के साथ उद्धव के वार्तालाप का वर्णन है। गोपियों की वाणी में उनके आर्त हृदय की पुकार है -

"बालपणां नी प्रीतड़ी हरि मूक्यां विसारी
राधा सखी नरवरी कुब्जा अधारी।"[५]

१- 'कंठ चातक नो' मुकुन्दभाई वि. पाराशर्य, प्रथमावृत्ति १९७० पृष्ठ २१
प्रकाशक : श्रेयार्थ सिद्धि ट्रस्ट; १२१४ चपाकुन्ज, कृष्णनगर, भावनगर।

२- वही, पृष्ठ २८

३- श्री त्रिकमराय जी हवेली(एडन) शताब्दी महोत्सव स्मारक ग्रंथ सं० २०१८ (१९६२ ई०) संपादक : श्री मगटलाल वल्लभदास वारेख,
प्रकाशक : श्री वृजलाल गोपालदास सीराज, प्रमुख शताब्दी महोत्सव समिति

४- वही, पृष्ठ १५

५- वही, पृष्ठ १६

प्रस्तुत भ्रमरगीत में श्रीकृष्ण के गोकुल छोड़कर मथुरा जाने के लिए गोपियों ने अपने आपको ही अपराधी स्वीकार किया है -

"नांक हरिनो छे नहि अमे रंक ब्रजवासी"

अंत में भ्रमरगीत के माहात्म्य का वर्णन है -

"भ्रमरगीत गाशे सांभलशे नरनारी, हरिचरण पामशे सदा सुखकारी ।"[१]

भ्रमरगीत प्रथमत: तो गेय प्रधान ही रहा और अनेक भक्त कवियों ने पद शैली में ही इस प्रसंग की रचना की है, किन्तु कालान्तर में भ्रमरगीत प्रसंग का इतना प्रसार हुआ कि कवियों ने (हिन्दी तथा गुजराती दोनों) विभिन्न नामों तथा विभिन्न शैलियों में इसे रूपायित किया । जैसे 'रसिकगीता', 'प्रेमरसगीता', 'उद्धवशतक', 'प्रीतिपचीसी,' आदि । इस प्रकार हिन्दी के रीतिकालीन तथा कुछ आधुनिक कवियों ने उक्त प्रसंग को सवैया, घनाक्षरी तथा दोहा जैसे छन्द में आबद्ध किया है । प्रस्तुत प्रबंध में अनुशंधित्सु ने 'भ्रमरगीत' प्रसंग से युक्त सभी रचनाओं का समावेश किया है ।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि हिन्दी काव्य में भ्रमरगीत की समृद्ध परंपरा के समान ही गुजराती भाषा में भी भ्रमरगीत की गौरवशाली परम्परा रही है ।

000000
0000
00